१२.२

१९८८का
...ी एन
...किया।
स्मारक
समारोहमें

(२८९)

...त्रण

...)। राष्ट्रपति
...प्रधान मंत्री श्री
...यात्राका राष्ट्रपति
...का आमंत्रण स्वीकार कर लिया है।
...वेतयोंकी सुविधाजनक तिथियोंपर
...की यात्रा करेंगे।

...ाबमें ११ ...े गये

...गढ़, ३० जनवरी (यू.)। पंजाबमें
२४ घंटेके दौरान 'बी' श्रेणीके एक
...री तथा सीमा सुरक्षा बलके एक हेड
...समेत ११ व्यक्ति मारे गये जबकि
...होंने ६६ लोगोंको गिरफ्तार किया,
...: आतंकवादी शामिल हैं।
...सरके वडाला गांवमें आज शाम
...दियोंने चार लोगोंकी गोली मारकर
...र दी। कोटकेशा गांवमें कल रात
...े एक संदिग्ध आतंकवादीको
...कर मार डाला। पुलिसने मृतकका नाम
...सीह बताया है।

...ी संधि

...तथा सहयोग संधि जैसी ही है।
...श्री जयवर्धनने कहा कि प्रस्तावित
...ी अगली वार्ता आगामी कुछ महीनेमें

तमिलनाडुमें कहीं खुशिय...

मद्रास, ३० जनवरी (यू.)। तमिलनाडुमें जानकी सरकारको भंगकर दिये जानेपर कहीं खुशियां मनायी गयी तो कहीं गम छाया रहा। कई दलोंके नेताओंने इसपर अपनी-अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है।

सबसे बड़ी खुशी जयललिता गुटमें मनायी गयी। उनके आवासपर आज भारी भीड़ देखी गयी। लोगोंको मिठाइयां बांटी गयी। कुछ लोगोंको खुशीमें नाचते-गाते देखा गया। दूसरी ओर श्रीमती जानकी रामचन्द्रनके खेमेमें भारी उदासी छायी रही। विधानसभा भंग किये जानेकी खबर सुनते ही वरिष्ठ मंत्री श्रीमती जानकीके आवासपर एकत्रित हो गये।

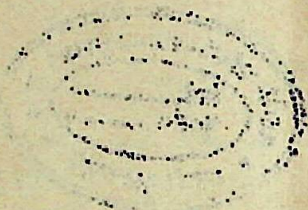
द्रविड़ मुनेत्र कड़गमके ...
करुणानिधिने प्रतिक्रिया व्यक्...
कि इंकाने सरकारको गिरानेक...
की। पूर्व मुख्य मंत्री ...
नेडुनचेझियनने विधानसभा...
स्वागत करते हुए कहा कि ...
सरकारका कार्यकाल बड़ा ही ...
उन्होंने कहा कि भंगसे नये स...
रास्ता प्रशस्त हुआ है। श्री शि...
प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए ...
अलोकतांत्रिक तथा जनहित ...
सैवादी कम्युनिस्ट पार्टीके रा...
नल्लाशिवनने कहा कि विधा...

एम.
कहा
अदा
आर.
सेनेका
चन्द्रन
रहा।
वका
ननेमें
कदम
माव
ी ए.
करना

हाले
कर्नाटक
है कि यह
रामचन्द्रनके
बिखर गयी।

पेइचिंग, ३० नरोत्तम सिहानूकने निर्वासित साझा सरकार इस्तीफा दे दिया और अपने पुत्र राजकुमार रणरिद्धको अपने स्थानपर सेनाका सर्वोच्च कमांडर नियुक्त किया।





कविता-कुसुमाकर

संग्रहकर्ता और सम्पादक
साहित्यमहोपाध्याय
श्रीरामबहोरी शुक्ल
एम. ए., बी. टी.
भूतपूर्व आचार्य, क्वीन्स कालेज, वाराणसी

प्रकाशक
हिन्दी-भवन
३७० रानीमंडी
इलाहाबाद ३

बारहवाँ मुद्रण [मूल्य रु० १·९२
१९६६]

प्रकाशक—
इन्द्रचन्द्र नारंग
हिन्दी-भवन
३७० रानी मंडी,
इलाहाबाद ३

राष्ट्रीय गान

जनगणमन-अधिनायक जय हे भारत-भाग्य-विधाता ।
पंजाब सिन्धु गुजरात मराठा, द्राविड़ उत्कल बंग
विन्ध्य हिमालय यमुना गंगा उच्छल जलधि तरंग
तव शुभ नामे जागे, तव शुभ आशिष माँगे,
गाहे तव जय-गाथा ।
जनगण मंगल-दायक जय हे, भारत-भाग्य-विधाता
जय हे, जय हे, जय हे,
जय जय जय, जय हे ॥

मुद्रक—
इन्द्रचन्द्र नारंग
कमल मुद्रणालय
३७० रानी मंडी
इलाहाबाद ३



विज्ञप्ति

कविता में शब्द और अर्थ की रमणीयता के द्वारा मानव भावों का यथातथ्य तथा प्राकृतिक सुषमा का संश्लिष्ट चित्रण प्रस्तुत कियो जाता है। उसके पढ़ने वा सुनने से मन की उदात्त प्रवृत्तियों का परिष्कार और विस्तार होता है, एवं सौन्दर्य की अनुभूति होती है, जिससे सुरुचि बढ़ती है। इसी की उपलब्धि तथा सिद्धि के लिए हिन्दी की पुरानी और नयी, मुक्तक तथा प्रबन्ध कविता रूपी कानन के कमनीय कुसुमों का यह आकर प्रस्तुत किया गया है। इसमें कविता के विविध विधानों के साथ ही उसके अब तक प्रचलित प्रायः समस्त रम्य रूपों का समावेश है। इतना ही नहीं, उसमें भारतीय संस्कृति, आदर्श, चेतना और लक्ष्य के भी दर्शन होंगे। उनका बहिरङ्ग तथा अन्तरङ्ग सौन्दर्य-पूर्ण होते हुए सद्वृत्ति, नैतिकता, भक्ति-भावना, स्वदेश-प्रेम, मानवता, सच्चरित्रता आदि की भावना को प्रेरित करने में सहायक हो—यह ध्येय भी उन्हें सङ्कलित करते समय रखा गया है। इनमें हिन्दी-कविता का क्रमिक विकास प्रदर्शित किया गया है, जिससे उसके द्वारा देश के धार्मिक, नैतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय भावों एवं विचारों ने उत्तरोत्तर जो रूप ग्रहण किया है उसका भी परिचय हो जाय तथा यह भी विदित हो जाय कि उसके वर्तमान जागरण में अतीत कितना और किस प्रकार अन्तर्निहित हो कर उसके भावी निर्माण की दिशा का संकेत करता है। तात्पर्य यह कि व्यक्तिगत सुरुचि और स्वस्थ वृत्तियों के विकास के साथ ही कविता-

कुसुमाकर राष्ट्र के पदक्षेप की प्रतिध्वनि भी सुनायेगा और भविष्यत् की गतिविधि को इङ्गित करेगा।

इस पुस्तक के प्रारम्भ में दिया 'हिन्दी कविता का विकास' ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के रूप में विषय-बोध में सहायक होगा। 'कवि-परिचय' से कवियों के मानसिक विकास, काव्य-सौष्ठव और शैली-वैशिष्ट्य का परिचय मिलेगा, जिससे उद्धृत रचनाओं में उनको भलीभाँति समझने में सुविधा होगी। प्रत्येक कवि की भाषा, भाव, विचार, उद्देश्य तथा उसकी साहित्यिक देन को हृदयंगम करने के विचार से उसकी कविता के अवतरणों के पश्चात् अभ्यास और विमर्श की योजना की गयी है। इसके सहारे मौखिक और लिखित रचना करने का ध्यान रखा जायगा तो उपयुक्त लक्ष्य तक पहुँचना सुगम हो जायगा।

इस संग्रह के लिए अपनी कविताओं के सङ्कलन करने की अनुमति देने के लिए मैं वर्तमान युग के सभी कवियों के प्रति कृतज्ञ हूँ। जिन मित्रों के द्वारा कुछ अन्य कवियों की कविताएँ संग्रह के लिए ग्रहण करना सुलभ हुआ है उनका भी अनुगृहीत हूँ। साथ ही मैं साहित्यरत्न श्रीबलदेवप्रसाद शुक्ल की तत्परतापूर्वक की गयी सहायता को कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करता हूँ। उन्होंने संगृहीत कविताओं के चयन और सम्पादन का अधिकांश कार्य सम्पन्न किया है तथा भूमिका और कविपरिचय की सामग्री भी सुव्यवस्थित की है। इस प्रकार इस संग्रह के प्रस्तुत करने में उनका बहुत अधिक योग रहा है।

रामबहोरी शुक्ल



सूची



हिन्दी कविता का विकास

आज राष्ट्रभाषा हो जाने पर हिन्दी का क्षेत्र समस्त भारत है, और राजसत्ता के आश्रय से बोलचाल और कामकाज के व्यवहार और साहित्य के निर्माण के लिए उसकी समस्याएँ असीम हो गयी हैं, किन्तु अतीत में जब उसे राजशक्ति के सहारे पनपने और फैलने की सुविधा नहीं थी तब भी वह उसी भूभाग तक सीमित नहीं थी जिसमें वह बोली जाती थी और साहित्य-सर्जन का माध्यम थी। अत्यन्त प्राचीन काल से धार्मिक स्थानों और तीर्थों के यात्रियों, साधु-सन्तों की जमातों, व्यापारियों और व्यवसायियों के सार्थवाहों आदि के द्वारा वह देश की विविध भाषाओं के बोलने और समझने वालों के परस्पर उपयोग का साधन थी। इससे उसमें अतीत युग से अपनी सीमा के भीतर ही नहीं उसके बाहर भी लोक के उद्गार लिखित रूप में व्यक्त होते आ रहे हैं। वह जनभाषा बहुत पहले हो चुकी होगी तभी तो राजस्थान से मिथिला तक और हिमालय से विंध्यमेखला के अन्तर्गत विशाल क्षेत्र की विविध बोलियों में रचित उसके साहित्य की उपलब्धि होती है। इतना ही नहीं, महाराष्ट्र संत ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, समर्थ रामदास ही नहीं वहीं के मुसलमान फकीर दादू पिंजारा की भी हिंदी में लिखी कविताएँ मिलती हैं और छत्रपति शिवाजी के पिता शाहजी के दरबारी महाराष्ट्र कवि जयराम के अतिरिक्त महादजी शिंदे, दौलतराव शिंदे आदि राजा-महाराजा तक हिन्दी में कविता करते थे। साथ ही सुदूर दक्षिण केरल तक में हिन्दी में कविता की गयी है। वहाँ के महाराज गर्भ श्रीमान् (जन्म सं० १८७०) ने भी 'पद्मनाभ' छाप दे कर ब्रजभाषा में कीर्तन के पद लिखे थे। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में लिखी 'दखिनी' की रचनाओं की भाषा भी बहुत कुछ हिन्दी ही है। इस प्रकार अब तक की खोजों के आधार पर यह निस्सङ्कोच कहा जा सकता है कि काव्य-भाषा

के रूप में हिन्दी देश के बहुत बड़े क्षेत्र में प्याप्त हो चुकी थी। अब तक प्राप्त रचनाओं के आधार पर विक्रम की आठवीं शताब्दी में उसका आरंभ माना जाता है। तब से बारहवीं शताब्दी तक दोहा, चौपाई, सोरठा, छप्पय आदि छंदों में लिखी सिद्ध और नाथ सम्प्रदायों की कुछ फुटकल कविताएँ मिली हैं। सिद्धों ने जाँतिपाँति से उत्पन्न ऊँच-नीच के भेद, पाखण्ड-निन्दा, गुरु-महिमा आदि का वर्णन 'जनता की श्रद्धा शास्त्रज्ञ विद्वानों पर से' हटाने और वाममार्ग के प्रचार के लिए किया। नाथ सम्प्रदाय के आचार्य गोरखनाथ के नाम से बहुत सी वाणियाँ प्रचलित हैं। उनकी भाषा में राजस्थानी, गुजराती और खड़ी बोली का पुट है तथा हठयोग सम्बन्धी 'साखियाँ' और 'बानियाँ' रची गयी हैं। नाथ योगियों ने भी वज्रयानी सिद्धों से प्रेरित हो कर "बाह्य पूजा, जातिपाँति, तीर्थाटन इत्यादि के प्रति उपेक्षा-बुद्धि का प्रचार किया, रहस्यदर्शी बन कर शास्त्रज्ञ विद्वानों का तिरस्कार करने और मन-माने रूपकों के द्वारा अटपटी बानी में पहेलियाँ बुझाने का रास्ता दिखाया। घट के भीतर चक्र, नाड़ियाँ, शून्य-देश आदि मान कर साधना करने की बात फैलाई और 'नाद, विंदु, सुरति, निरति' ऐसे शब्दों की उद्धरणी करना सिखाया।" आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन सिद्धों और योगियों की रचनाओं में साम्प्रदायिक शिक्षा की अभिव्यक्ति होने के कारण इन्हें साहित्य के अन्तर्गत नहीं ग्रहण किया। किन्तु यदि 'ज्ञानराशि के संचित कोश का नाम साहित्य है' तो इन्हें भी उसी रूप में साहित्य के अंतर्गत स्थान देना चाहिये जिस रूप में इन्हीं की परम्परा में प्रचलित और इन्हीं की प्रेरणा से गृहीत साधना की बातें 'साखी, सबदी, दोहरा' में लिखने वाले कबीर और अन्य संतों की उक्तियों को लिया जाता है।

आगे चल कर आदिकाल (सं० १०५०-१३७५) के भीतर जो वीरगाथाएँ ली जाती हैं उनकी भाषा का पूर्वरूप हेमचन्द्र (बारहवीं शताब्दी), सोमप्रभ सूरि (रचनाकाल सं० १२४१), मेरुतुंग (रचनाकाल सं० १३६१) आदि जैनाचार्यों के रचे अपभ्रंश काव्यों में मिलता है। इनकी रचनाओं में साहित्यिक सौष्ठव भी है। इसी युग में अद्दहमाण

(अब्दुल रहमान) के रचे 'संदेशरासक' में बोल-चाल की भाषा के अधिक निकट की अपभ्रंश या देशभाषा मिलती है। अमीर खुसरो, (सं० १३१०-८२) के दोहों, गीतों, पहेलियों और मुकरियों में खड़ी बोली का जो निखरा रूप आज दिखलाई पड़ता है वह भले ही उनके लोकवाणी में प्रचलन के कारण धीरे-धीरे बदलते-बदलते ऐसा हुआ हो किन्तु उसमें प्राचीनता कुछ न कुछ अवश्य है। उधर पूरब में मिथिला के कवि विद्यापति (संवत् १४६० में वर्तमान) ने देशभाषा मिश्रित अपभ्रंश की रचनाओं के साथ ही राधा-कृष्ण के शृंगार-संबंधी पद मैथिली हिंदी में लिखे। इनमें प्रेमजन्य मानसिक व्यापारों, उनके उद्दीपनों आदि का रसमय वर्णन है। परन्तु इस काल की सबसे प्रमुख रचनाएँ 'रासो' नाम की वीर-गाथाएँ हैं। इनमें शौर्य और प्रेम के प्रसंगों का वर्णन है। यह सच है कि आज जिस रूप में ये रासो काव्य मिलते हैं उनमें "मूल और प्रक्षिप्त अंश एक-दूसरे से अलग करना सहज नहीं", फिर भी उनमें कुछ तो अपना पुराना रूप है ही। रासो प्रबंध और गीत—इन दो रूपों में मिलते हैं। खुमान रासो, हम्मीर रासो, पृथ्वीराज रासो, जयचंद्र प्रकाश और जयमयंक जसचंद्रिका प्रबंध काव्य हैं और बीसलदेव रासो तथा आल्हा खण्ड गीतकाव्य। इनमें जयचन्द्र प्रकाश एवं जयमयंक जसचंद्रिका का तो नाममात्र सुना जाता है। खुमान रासो की प्राप्त प्रति में महाराणा प्रताप तथा राजसिंह तक का वर्णन होने से उसे सोलहवीं या अठारहवीं शताब्दी की कृति समझा जाता है। हम्मीर रासो की भी प्रामाणिक प्रति अभी तक नहीं मिली। पृथ्वीराज रासो के रचयिता चन्दबरदाई हैं और उसको उनके पुत्र जल्हण ने पूरा किया। इस विशालकाय काव्य को उसका वर्तमान रूप सत्रहवीं शताब्दी में दिया गया होगा, ऐसा विद्वानों का विचार है। इस प्रकार इसकी भी प्रामाणिकता में सन्देह है। फिर भी इसमें थोड़ा-बहुत पुराना अंश अवश्य है, 'जिसका मुख्य विषय नायक की प्रेमलीला, कन्या-हरण और शत्रु-पराजय है'। पुराने प्रेमाख्यानों के ढंग से इसमें शुक और शुकी के संवाद के रूप में पृथ्वीराज के इच्छिनी, शशिव्रता और संयोगिता से हुए

विवाहों का सरस वर्णन है, जिसमें ऋतुओं और नखशिख का परंपरागत रूप भी देखने को मिलता है, युद्ध के प्रसंगों में वीर भावों के उत्कर्ष और रणस्थल के सजीव चित्रण के साथ कल्पना और उक्तियों का सौष्ठव भी दर्शनीय है। नरपतिनाल्ह-रचित 'बीसलदेव रासो' गीत काव्य है। यह रचना भी अपने मूल रूप में नहीं मिली। इसमें शृंगार की प्रधानता है। इसी के सदृश जगनिक का 'आल्हाखंड' भी गेय काव्य है, परन्तु यह जिस रूप में इस समय प्रचलित है वह भी भाषा तथा विषय-वस्तु के विचार से पुराना नहीं है। अत्यन्त लोकप्रिय होने से उसमें तो बहुत पीछे की भाषा ने स्थान जमा लिया है और उसके कुछ वर्ण्य विषय, पदार्थ आदि भी उत्तरकालीन हो गये हैं। राजस्थानी की उक्त रचनाएँ 'पिंगल' की हैं। इनके अतिरिक्त 'डिंगल' में भी बहुत से काव्य लिखे गये, जिनमें रघुनाथ रूपक, राज रूपक, ढोलामारू रा दूहा, कृषनरुकमिणि री बेल, बाँकीदास ग्रन्थावली आदि का प्रकाशन हो चुका है। राजस्थानी की इन दोनों प्रकार की रचनाओं का भाण्डार अभी भी प्रचुर परिमाण में अज्ञात और अप्रकाशित है। इस प्रकार इस युग की रचनाओं का या तो नाम ही सुना जाता है या उनका पुराना कलेवर बहुत कुछ बदला हुआ हाथ लगा है। इनमें मिले प्राचीन चित्र से इतना अवश्य विदित होता है कि उन दिनों राजनीतिक संघर्ष छिड़ा था। फलतः कवियों ने वीरोत्साह का आँखों-देखा वर्णन किया और नायक-नायिका के प्रेमजन्य व्यापारों का उद्घाटन शृंगार के चित्रण के द्वारा किया। इस प्रकार हिन्दी के आदि युग में धार्मिक भावों के साथ वीर और श्रृङ्गार के उद्गार और व्यापार कवियों के द्वारा अंकित हुए। अमीर खुसरो की प्राप्त कविताओं के अतिरिक्त 'दखिनी' के कवियों की कृतियों से खड़ी बोली को उस युग की कविता का प्रमाण मिलता है। किन्तु ब्रज और अवधी के क्षेत्र में क्या इन दिनों कवि-कण्ठ फूटा ही न था? जिन भाषाओं में सूर जायसी और तुलसी जैसे प्रौढ़ कवि अगली पीढ़ी में हुए, उन्हें उनकी काव्य-परम्परा दाय के रूप में अवश्य मिली होगी। उसका अस्तित्व था तभी तो तुलसी ने 'मानस' में 'भाषा' के कवियों को भी

प्रणाम किया है। अभी इन भाषाओं के 'आदिकाल' के कवियों की वाणी हाथ नहीं लगी। संभव है आगे मिले। यह भी संभव है कि तत्कालीन राजनीतिक उथल-पुथल से इन भाषाओं के प्रदेशों की यह अमूल्य निधि मानव या प्राकृतिक कारणों से लुप्त वा नष्ट हो गयी हो। अतः इन मंडलों की काव्य-प्रवृत्ति का विवरण अभी अन्धकार में ही विलीन है।

इस युग के अनन्तर हिन्दी काव्य के मध्ययुग के पूर्वार्द्ध (संवत् १३७५-१७००) में मुख्यतया भक्ति-विषयक कविता रची गयी। आदि (वीरगाथा) काल के संघर्षों का अवसान होते होते इस देश पर इस्लाम की सत्ता छा गयी। कुछ विदेशी मुसलमान यहाँ बस गये। उन्होंने शस्त्र-बल से यहाँ के लोगों को भी इस्लाम की दीक्षा दी। इस प्रकार एक ओर राज्य और धर्म के प्रसार के साथ इस्लाम यहाँ के सामाजिक जीवन को प्रभावित कर रहा था तो दूसरी ओर निकट के सम्पर्क से समझ, संवेदना आदि के कारण एक-दूसरे के प्रति उदारता के भाव भी प्रबल हो रहे थे। फलतः धर्म और आचार-व्यवहार के कारण जिस द्वेष, खिंचाव, असहिष्णुता आदि से हिन्दू-मुसलमान परस्पर अलग हो रहे थे उनको हटा कर धीरे-धीरे मानव मात्र की एकता के भाव अपना प्रभाव दिखलाने लगे। अतएव धार्मिक विचारों और रहन-सहन की कट्टरता शिथिल हुई। इस देश की पुरातन बातों के प्रति उदार भाव जगे एवं उनके तथा इस्लामी धर्मान्धता के प्रति कठोर प्रहार भी इस विचार से हुए कि लोग उन्हें त्याग कर धर्म के उस सच्चे रूप को पहचानें, जिसमें मानव मात्र समान समझे जाते हैं। इस प्रकार इस समय की भक्ति के उद्‌गार निर्गुण और सगुण उपासना को ले कर व्यक्त हुए। निर्गुण भक्त कवियों में कबीर प्रमुख हैं। नानक, दादू, रैदास, धर्मदास, मलूकदास, रज्जब, सहजोबाई, दयाबाई आदि इन्हीं की परम्परा में हुए। कबीर की विचारधारा में प्रवाहित होते हुए भी अधिकांश सन्तों ने अपने-अपने पन्थ चलाये। कुछ थोड़े से अपवाद छोड़ इनमें अधिकतर थे हिन्दुओं में निम्न कहे गये वर्ग में अथवा उनसे भी बाहर के वर्ग में उत्पन्न। इन संतों में बहुतेरे पुरातन वर्णाश्रम तथा समाज-व्यवस्था के निन्दक निकले। इन्होंने जहाँ बौद्ध

धर्म की वज्रयानी शाखा के सिद्धों एवं नाथ योगियों से आध्यात्मिक साधना की पद्धति ग्रहण की वहीं उनकी चलाई रीति को अपना कर उपासना की प्राचीन प्रणाली, मूर्तिपूजा तथा वेद-शास्त्र-पुराण आदि के सिद्धान्तों के साथ ही वर्ण-व्यवस्था, तीर्थाटन की उपयोगिता आदि को भी आड़े हाथों लिया। इन्होंने इस्लाम के आचार-व्यवहार की भी इसी भाँति कुत्सा की। फलतः इनकी वाणी में कटुता अधिक मिली। इनकी देखादेखी इनके अनुयायी भी प्रचलित व्यवस्था की निन्दा को ही धर्म का सच्चा मार्ग समझ बैठे। इन्होंने समाज के निम्न स्तर को ही प्रभावित किया। उनके विचार और आचार सुधारे। ऊपरी स्तर को अपनी ओर खींचने के स्थान पर उसे और दूर कर दिया। इन संतों में अधिक अपढ़ और 'अपने आप बने' ज्ञानी थे। ये प्रायः घूमते भी रहते थे। इससे इनकी रचना में कवित्व और साहित्यिक सौष्ठव नहीं, विविध बोलियों का सम्मिश्रण अवश्य है। हाँ, हृदय से निकली हुई बात को स्पष्ट, खरे और दो-टूक ढंग से कहने में जो गुण होता है वह इनकी कविता में अवश्य है। सुन्दरदास इनमें अपवाद हैं। परिष्कृत ब्रजभाषा में रची उनकी कविता में कवित्व तथा उक्ति-वैशिष्ट्य भी है।

इन संतों की अटपटी वाणी के प्रहार से चोट खाये सहृदय समुदाय की मरहम-पट्टी की सूफी फकीरों की रची प्रेम-कथाओं की मधुर और रसीली कविता ने। इसमें देश के प्रचलित और लोकप्रिय आख्यानों के सहारे परस्पर सौहार्द बढ़ाने वाले भाव व्यक्त हुए। ये सभी अवधी में रचे प्रबन्धकाव्य हैं। कुतबन, मंझन, जायसी, आलम, उसमान, शेख नबी, कासिमशाह, नूर मुहम्मद, निसार बख्श, फाजिलशाह आदि प्रसिद्ध सूफी कवि हैं जिन्होंने अपने धार्मिक विचारों सिद्धान्तों और आदर्शों का प्रचार करने के लिए, इन आख्यान-काव्यों की रचना की। इनके अतिरिक्त इन्हीं की प्रणाली में कुछ हिन्दू कवियों ने भी मनोरञ्जन के लिए आख्यान-काव्य लिखे। इनमें दामो, पुहकर और चतुर्भुजदास कायस्थ की रचना इसी काल के अन्तर्गत है। इन्होंने पौराणिक कथाओं का वर्णन किया। जायसीकृत पदमावत प्रबन्ध-निर्वाह, रचना-सौष्ठव, वर्णन-

सौकर्य, चरित्र-चित्रण, काव्य-कौशल आदि की दृष्टियों से सूफी रचनाओं से सबसे श्रेष्ठ काव्य है। दोहा-चौपाई में रचे इन सूफी आख्यान-काव्यों में कवि की धार्मिक उपासना और प्रेम की उस सर्वव्यापकता के दर्शन होते हैं जिसमें धार्मिक संकीर्णता को स्थान नहीं। सूफी धर्म में इस्लाम और वेदान्त दोनों का समन्वय भले ही हो, किन्तु वह है तो विदेशी नींव पर बना आकर्षक प्रासाद ही। इसी से सूफियों की 'प्रेम की पीर' इस देश के लोगों के मन पर अधिक व्यापक प्रभाव न कर सकी। उसने मुसलमानों को अवश्य ही पर-धर्म-सहिष्णु और उदार बनाया, परन्तु हिन्दुओं के जीवन में कवियों के मन की आशा के अनुरूप प्रवेश नहीं किया।

इसी युग में भक्ति के विविध सम्प्रदायों के प्रवर्तक रामानुज, मध्व, निम्बार्क, वल्लभ आदि आचार्यों के भारतीय परम्परा को अक्षुण्ण रखने के प्रयत्न दक्षिण से उत्तर तक अपना प्रभाव पहुँचा चुके थे। उन्होंने विष्णु की साकारोपासना का मार्ग प्रवर्तित किया। उनके अनुयायी विशेष कर राम और कृष्ण—इन दो अवतारों के चरित ले कर हिन्दी काव्य के क्षेत्र में आये। रामोपासकों में रामानन्द, अग्रदास, नाभादास, तुलसीदास, प्राणचन्द चौहान, हृदयराम, सेनापति आदि कवि हुए हैं। तुलसीदास, इन भक्तों की माला के ही नहीं, हिन्दी के समस्त कवियों की माला के सुमेरु हैं। उनके काव्यों में अवधी अपने परम उत्कृष्ट रूप में निखर उठी है। उनका सर्वश्रेष्ठ काव्य 'रामचरितमानस' प्रबन्धकाव्य के लिए अपेक्षित सभी विशेषताओं का आकर है और प्रभाव की दृष्टि से हिन्दी की सब से व्यापक ऐसी रचना है जो आज भी हिन्दी भाषा के क्षेत्र में ही नहीं, उससे बहुत दूर तक मानव-विचारों और जीवन को अपने अनुकूल ढालते रहने में समर्थ है। तुलसी भारती के शृङ्गार हैं। वे विश्व के सर्वश्रेष्ठ कवियों की श्रेणी में अग्रगण्य हैं। अपने समय तक प्रचलित प्रायः सभी प्रकार की काव्य-रचना की शैलियों में तथा काव्य-भाषा—व्रज और अवधी—के विविध प्रकार के परिमार्जित रूपों में गोस्वामीजी ने रामचरितमानस, कवितावली, गीतावली, रामललानहछू,

जानकी-मंगल आदि में राम का चरित लिखा। उन्होंने विनयपत्रिका, कवितावली, दोहावली आदि में ऐसी कविता भी रची जो भक्ति की आत्मपरक अभिव्यक्ति है, परन्तु उनमें भी उनकी कवित्व शक्ति की उत्कृष्टता मिलती है। कवित्व-चातुर्य दिखलाने के लिए नहीं, किन्तु 'स्वान्तःसुखाय' लिखी उनकी कृतियों में कवित्व का लोक-हितकर रूप प्रदर्शित हुआ।

जिन दिनों अवधी के क्षेत्र में तुलसीदास रामचन्द्र के चरित्र-चित्रण के द्वारा लोकधर्म की प्रतिष्ठा के साथ काव्य और उसके रचना-कौशल का चरमोत्कर्ष दिखा रहे थे उन्हीं दिनों व्रजमण्डल में कृष्ण की लीलाओं के मधुर प्रसंग को ले कर उठी 'अष्टछाप' के कवियों की वीणा की ध्वनि समस्त देश में व्याप्त हुई। उसकी झङ्कार परवर्ती हिन्दी काव्य में भी प्रतिध्वनित हुई जो रह रह कर आज पर्यन्त गूँज उठती है। इतना ही नहीं, वह बंगाल में भी 'व्रज बुलि' काव्य के रूप में बहुत दिनों तक सुनायी पड़ती रही। सूर आदि अष्टछाप के कवियों के अतिरिक्त हितहरिवंश, गदाधर भट्ट, हरिदास, हरिराम व्यास, ध्रुवदास आदि विविध कृष्णोपासक सम्प्रदायों के अनुयायी, एवं मीरा नरोत्तम-दास, और रसखानि आदि सम्प्रदायों की परिधि से बाहर के कवियों ने इसी युग में कृष्ण-काव्य की श्रीवृद्धि की। जैसे तुलसीदास के 'मानस' में वैसे ही सूर नन्ददास आदि की रचनाओं में भी निर्गुण उपासना की लोक-व्यवहार के लिए अनुपयुक्तता को प्रदर्शित किया गया। ऐसी रच-नाओं में उक्ति-चमत्कार मात्र है, कवित्व नहीं। किन्तु इन साम्प्रदायिक बातों के अतिरिक्त इन कवियों ने कृष्ण के बाल-चरित और गोपी-प्रेम के विषय में अनूठी कविता की है। सूर इन कृष्ण-भक्त कवियों के शिरोमणि हैं। इन कृष्ण-प्रेमियों ने वात्सल्य शृङ्गार और भक्ति का ऐसा सरस वर्णन किया है कि आज भी इनकी कविता बासी नहीं हुई और इन्हीं के प्रभाव से आगामी काव्य-युग में व्रज-भाषा ने देश भर में काव्य-भाषा का स्थान ग्रहण कर लिया। तभी तो इन्हीं के काल में रहीम, गंग, नरहरि बंदीजन, टोडरमल, बीरबल आदि ने अकबर के

दरवार में, केशवदास लालचन्द आदि ने तत्कालीन अन्य राज-सभाओं में एवं सुन्दर ने शाहजहाँ के दरवार में व्रजभाषा में रचित अपने-अपने काव्यों से हिन्दी साहित्य को सजाया। राजकीय क्षेत्र के वाहर के कादिर मुवारक और जैन कवि बनारसीदास की रचनाएँ भी इसी काल के अन्तर्गत हैं। इनके अतिरिक्त अगणित व्रजभाषा के कवि हुए।

हिन्दी-काव्य के इस मध्य-युग के उत्तरार्द्ध (सं० १७००–१९००) में कविता में शृङ्गार रस की रचनाओं की प्रमुखता हुई। कुछ में अलङ्कार रस आदि काव्य-रीति, नायिकाभेद, नख-शिख, षड्ऋतु आदि ऐसे विषयों का वर्णन है जो रीति-शास्त्र के अन्तर्गत हैं। केशवदास की कविप्रिया और रसिकप्रिया तथा सेनापति के षड्ऋतु-वर्णन इस 'रीति-काल' के पहले के हैं। इस युग में रीति-ग्रन्थों के कर्त्ता चिन्तामणि, जसवंतसिंह, मतिराम, देव, श्रीपति, भिखारीदास, रघुनाथ बन्दीजन, पद्माकर, ग्वाल, प्रतापसिंह आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। ये सव प्रधान-तथा शृङ्गार के ही कवि हैं। इन्होंने नायिका-भेद नख-शिख आदि का भी सरस निरूपण किया है। विहारी और रसलीन भी इन्हीं की सीमा के भीतर आयेंगे। वीररस के अद्वितीय ओजस्वी कवि भूषण की रचना भी रीतिवद्ध है। रीतिमुक्त कवियों में सव से अधिक आकर्षक हैं घन आनन्द, जिनके सदृश भाषा की स्वच्छता, अभिव्यञ्जना और वाग्विदग्धता हिन्दी के किसी पुराने कवि में नहीं मिलती। शृङ्गार के अतिरिक्त अन्य रसों का परिपाक भी इस युग में हुआ। नीति-कार वृन्द और गिरिधर, प्रवन्धकार सवलसिंह चौहान, गुरु गोविन्दसिंह, लाल, जोधराज, गुमान मिश्र, सूदन, मधुसूदनदास, चन्द्रशेखर वाजपेयी, गिरिधरदास तथा भक्तशिरोमणि नागरीदास, हितवृन्दावनदास, व्रजवासीदास और अन्योक्तिकार दीनदयाल गिरि की रचना का भी यही समय है। इस प्रकार इस युग में रीति और शृङ्गार के साथ वीर रस की मुक्त और प्रवन्धात्मक रचनाएँ हुईं तथा भक्ति और नीति-विषयक उद्गार भी निकले। इस काल में साहित्यनिर्माण विषयवस्तु की दृष्टि से सीमित रहा, एक ही विषय का प्रायः पिष्टपेषण अधिक हुआ, तत्कालीन राष्ट्रचेतना की झलक भी भूषण, सूदन, गुरु

गोविन्दसिंह आदि के काव्यों में मिली, काव्य-भाषा का रूप अत्यन्त परिमार्जित हुआ तथा उसमें उक्ति-चमत्कार और व्यञ्जना की अपूर्व शक्ति आयी।

नव-सर्जन का अभाव और शृङ्गार रस के लिए उपयुक्त मँजी हुई भाषा ले कर हिन्दी काव्य ने आधुनिक युग (संवत् १९०० से अब तक) में पदार्पण किया। सेवक, रघुराजसिंह, सरदार, ललितकिशोरी, लक्ष्मण-सिंह आदि इस काल के आरम्भिक कवि हैं, जिनकी कविता में युग की भावनाओं और प्रेरणाओं की छाप नहीं है। कुछ आगे चल कर भाषा के असाधारण कारीगर रत्नाकर ने भी पुरानी कथाओं और बातों को ही अपनी प्रौढ़ शैली में उक्ति-वैशिष्ट्य के साथ प्रस्तुत किया। परन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके मंडल के कवि पूर्वकालीन भक्ति तथा शृङ्गार संबंधी कविता करने तक ही सीमित न रहे। इन्होंने देशभक्ति, 'लोकहित, समाज-सुधार, मातृभाषा का उद्धार' आदि को कविता का विषय बना कर नवचेतना की सूचना दी। भारतेन्दु-काल की समाप्ति होते-होते हरिऔध भी काव्य-क्षेत्र में आ चुके थे। उन्होंने अपनी व्रजभाषा में रची कविता में अपेक्षाकृत कम, किन्तु खड़ी बोली की रचनाओं में कहीं अधिक मात्रा में नये युग की भावनाओं और विचारों को व्यक्त किया। श्रीधर पाठक, नाथूराम शर्मा शङ्कर, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, रामनरेश त्रिपाठी, लाला भगवानदीन आदि ने खड़ी बोली में तथा राय देवी-प्रसाद पूर्ण, कविरत्न सत्यनारायण, वियोगीहरि, दुलारेलाल भार्गव आदि ने व्रजभाषा में कविताएँ कीं। इन सब ने नये युग के साथ आये देश-भक्ति समाजसुधार आदि के विचार कविता के लिए अपनाये।

इस बीच महावीर प्रसाद द्विवेदी काव्य-भाषा के रूप में खड़ी बोली की प्रतिष्ठा कर चुके थे। उन्होंने स्वयं भी इस दिशा में काव्य-रचना कर मार्ग दिखलाया, और उनके प्रभाव से मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय, गिरिधर शर्मा नवरत्न, लोचनप्रसाद पांडेय, गोपालशरणसिंह आदि आगे आये। इनमें गुप्तजी ही सबसे प्रतिष्ठित कवि हैं, जिन्होंने देश के उत्तरोत्तर राजनीतिक जागरण के साथ विकसित राष्ट्रीय भावों

का पोषण अपनी रचनाओं में किया। साथ ही महाभारत, रामायण, पुराण, बौद्ध साहित्य आदि के पुरातन आख्यानों को मानवता के नवीन आदर्शों की छाया में कवितावद्ध किया। अतीत के गौरव-गान के साथ ही गुप्तजी ने वर्तमान युग के वैभव गाँधी का भी पुनीत आदर्श व्यक्त किया और स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् आज के देश की भावना को भी अपनी कविता में व्यक्त किया। द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता के साथ ही उन्होंने विषय और शैली-विषयक नयी दिशा के मोड़ को भी आँखों से ओझल नहीं किया।

द्विवेदीजी के समय में ही हिन्दी-कविता में विषय और शैली दोनों की दृष्टि से एकदम नया परिवर्तन आरम्भ हो चुका था। छायावाद और रहस्यवाद के कवि पाण्डेय मुकुटधर, प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी वर्मा आदि चाहे स्वतः प्रेरित हो 'अनन्त की ओर' उन्मुख हुए हों, चाहे अँग-रेजी और बँगला के कवियों से प्रभावित हुए हों, उन्होंने अभिव्यञ्जना-प्रधान आत्मपरक ऐसी कविताएँ लिखीं जिनसे हिन्दी-कविता नयी दिशा में मुड़ी। आध्यात्मिक सौन्दर्य और वेदना की अनुभूति तथा अभिव्यक्ति की लाक्षणिकता, चित्रमयता एवं कवित्वात्मकता इस शैली की कविता की विशेषता है। इसी युग में 'एक भारतीय आत्मा', 'नवीन', 'दिनकर', सोहनलाल द्विवेदी आदि की राष्ट्रीय कविताओं तथा श्यामनारायण पांडेय सुधीन्द्र आदि के वीर-काव्यों की रचना हुई, जिनसे देश की स्वातन्त्र्य-चेतना मुखर हुई। नूरजहाँ, विक्रमादित्य, साकेत, कामायनी, तुलसीदास, तक्षशिला, कुरुक्षेत्र आदि प्रबन्धकाव्यों के अतिरिक्त फुटकल रचनाओं की सृष्टि अधिक हुई, जिनके संग्रह प्रत्येक कवि ने प्रकाशित किये। इन्हीं दिनों देश में शासन एवं समाज के क्षेत्र में हो रही उथल-पुथल के बीच ऐसे कवि भी आये जो छायावादी तथा रहस्यवादी कवियों की भाँति निजी अनुभूति में ही मग्न रहना कवि-कर्म नहीं मानते थे। उन्होंने देश की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था में रूसी ढंग का परिवर्तन श्रेयस्कर समझा और व्यक्तिगत एवं सामाजिक सभी रूढ़ियों, बन्धनों, परंपराओं आदि को तोड़ कर नयी राह पर चलना उचित माना। कविता

के आलम्बन और उद्दीपन की अभिजातवर्गीय सामग्री को ठुकरा कर किसान मजदूर तथा दलित वर्ग को उसका उपादान बनाया। पन्त जैसे प्रकृति और सौन्दर्य के प्रेमी और निराला जैसे स्वतंत्रचेता कवि भी इन विचारों से कुछ समय तक प्रभावित हुए। 'प्रगतिवाद' के नाम से इस विद्रोही कविता की कुछ दिनों तक धूम रही, और आज भी त्रिलोचन, नागार्जुन आदि के द्वारा यह वर्गसंघर्ष कभी-कभी प्रतिध्वनित हो जाता है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व देश की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक अस्थिरता से असन्तोष और क्षोभ का घोष कुछ 'प्रयोगवादी' कवियों ने किया, जिनके स्वर 'प्रथम तारसप्तक' और 'द्वितीय तारसप्तक' में सुनायी पड़े। अज्ञेय, रामविलास शर्मा, गजानन मुक्तिबोध, भारतभूषण, गिरिजा कुमार माथुर आदि प्रयोगवाद के प्रमुख प्रतिष्ठापक हैं। अभी इनके द्वारा गृहीत 'वस्तु और शिल्प' बहुत ही सीमित वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। इन 'वादों' के चक्र से नितान्त अलग माखनलाल चतुर्वेदी, भगवतीचरण वर्मा, बच्चन, अंचल, आदि कभी राजनीतिक और सामाजिक विद्रोह और कभी अपनी निजी अनुभूति की स्वच्छन्द कविता करते रहे। इधर कुछ कवियों में स्वस्थ मानववाद के भी दर्शन हुए। विनोबा के द्वारा प्रवर्तित अहिंसक सामाजिक क्रान्ति के अभिनन्दन और समर्थन में भी समर्थ कवियों की वाणी मुखरित हुई है। मैथिलीशरण गुप्त के 'पृथिवीपुत्र' तथा पंत के पहले के गीतों की भाँति 'अतिमा' में संगृहीत कुछ गीतों में मानव-श्रेष्ठता को स्वीकार किया गया है और भूतल को सब प्रकार से सुखी बनाने के अभिलाष में विद्रोह और विनाश के स्थान पर नव-निर्माण का सन्देश है। माखनलालजी की नई कविताओं में स्वातंत्र्य-प्राप्ति के बाद उभरे अशिव के प्रति व्यक्त हुए विद्रोह में भी यही स्वस्थ भावना निहित है। इस प्रकार सदैव की भाँति आज भी हिन्दी-कविता देश के नये जीवन की आकाङ्क्षाओं और आशाओं का प्रतिनिधित्व करने को अग्रसर हो रही है।

कवि-परिचय

१. कबीर

कबीर का जन्म संवत् १४५६ के लगभग हुआ। वे पढ़े-लिखे न थे। लड़कपन से कपड़ा बुनते और हिन्दू साधु-सन्तों के बीच उठते-बैठते। वे वैष्णव आचार्य रामानन्द के शिष्य थे। कबीर-पंथी मुसलमान उन्हें सूफी फकीर शेख तकी का शिष्य मानते हैं। देशाटन और जानकारों के साथ रहने से उनका अनुभव और ज्ञान विस्तृत हो गया था। इसका प्रभाव उनकी भाषा पर भी पड़ा। यद्यपि वे कह गये हैं कि 'मेरी बोली पूरबी' तथापि उसमें अवधी, ब्रज, खड़ी, बिहारी, पंजाबी और राजस्थानी के साथ फारसी-अरबी तक का मेल है। कवि ने शास्त्रीय विधि-निषेध की ही भाँति भाषा में व्याकरण की शृङ्खलाएँ भी तोड़ी हैं। उनकी उक्तियों में अलङ्कारों और छन्दःशास्त्र के नियमों से युक्त भाषा का माधुर्य नहीं। हाँ, भावों की निष्कपट अभिव्यञ्जना अवश्य है।

कबीर के रचे हुए ग्रन्थों में 'बीजक' सब से अधिक महत्त्वपूर्ण है। उनके अनुयायियों का तो यह धर्म-ग्रन्थ ही है। उसके रमैनी, शब्द और साखी—ये तीन खण्ड हैं। उनकी कविता के दो संग्रह 'कबीर-वचनावली' और 'कबीर-ग्रन्थावली' भी प्रकाशित हुए हैं।

कबीर ने हिन्दू और मुसलमान दोनों के धार्मिक अन्धविश्वासों की तीव्र आलोचना की है। ढोंग उन्हें अप्रिय था। उनको तो अहिंसा, सत्य, सदाचार, प्रेम आदि सद्गुण इष्ट थे। उन्होंने आचरण की महत्ता पर बल दिया है। कबीर कहीं 'राम की बहुरिया' बन कर सखी-भाव के से भक्त जान पड़ते हैं, कहीं मुक्ति न माँग कर भक्ति की याचना करते हुए दास, कहीं रामानन्दी भावना से दाशरथि राम के भक्त दिखाई पड़ते हैं तो कहीं यह कहते हुए सुने जाते हैं कि 'दसरथ सुत तिहुँ लोक बखाना, राम-नाम का मरम है आना' और कभी 'निरगुन राम, निरगुन राम

जपहु रे भाई' कह कर राम और ब्रह्म में कोई अंतर नहीं रखते। उन्होंने राम, गोविन्द, हरि आदि नामों के द्वारा निराकार ब्रह्म को भावनाक्षेत्र में साकार बना कर, निर्गुण-सगुण का भेद मिटाने की चेष्टा भी की थी। वे वज्रयानी सिद्धों और नाथ-पन्थी योगियों की परम्परा में आते हैं। उन्हीं के समान उन्होंने वेद, शास्त्र, पुराण तथा उनके सिद्धान्तों को अस्वीकार ही नहीं किया, अपितु उनको जी खोल कर भला-बुरा कहा है। वे अपढ़ थे, और आत्मानुभव से ही ज्ञानी हुए थे। वे कहते भी हैं कि 'सो ज्ञानी जो आप बिचारे।' कबीर ने सत्संग से वेदान्त, उपनिषद् और पुराणों की बहुत-सी बातें जान ली थीं। हठयोग की क्रियाओं का भी उनके 'शब्दों' में वर्णन है। कबीर ने रहस्यात्मक 'शब्द' भी कहे हैं। उन्होंने कहीं-कहीं परमात्मा को मित्र, माता, पिता या पति आदि के रूप में देखा है। सिद्धों के सदृश उनकी भी 'उलटबासियाँ' प्रसिद्ध हैं, जिन्हें बूझना आसान नहीं है। कबीर की रहस्योक्तियों में अनेक-रूपता नहीं है तथापि उनमें अङ्कित चित्र प्रायः बहुत सुन्दर हुए हैं। उनकी कविता उनके हृदय का स्वच्छ दर्पण है। इसीसे उनकी उक्तियाँ प्रभावशालिनी तथा लोक-प्रिय हैं। उनकी अधिकांश उक्तियाँ नीति और उपदेश-मात्र हैं। आध्यात्मिक ज्ञान-सम्बन्धी रचनाओं में वे निर्विवाद सर्वश्रेष्ठ हैं। उनके नीति-विषयक दोहे बहुत प्रचलित हैं। भारतीय जन-समाज, विशेष कर पहले समय के निम्न स्तर के कहे जाने वाले लोगों पर उनका बहुत प्रभाव पड़ा था और अब तो उच्च श्रेणी के विचारक भी कबीर का प्रभाव ग्रहण कर रहे हैं।

२. सूरदास

सूरदास का जन्म सं० १५४० के लगभग रुनकता (मथुरा) में हुआ। कुछ लोग उन्हें सारस्वत ब्राह्मण रामदास का पुत्र मानते हैं, कुछ चन्दबरदाई के वंशज हरीचन्द के कनिष्ठ पुत्र। 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' में लिखा है कि वह पहले गऊघाट पर रहते थे। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने वहीं उनके विनय-सम्बन्धी पद सुने और यह कह कर उन्हें

अपना शिष्य बनाया कि 'सूर ह्वैके कहा घिघियात है ?' तदनन्तर महाप्रभु के आदेश से श्रीमद्भागवत में वर्णित आख्यान का आधार ले कर सूरदास ने अन्य प्रसङ्गों के अपेक्षाकृत कम किन्तु श्रीकृष्ण-लीला के अधिक पद रचे, जिनमें आज छह हजार के लगभग पद उपलब्ध हैं। पारसौली गाँव में संवत् १६२० के आसपास सूरदास गोलोकवासी हुए।

सूरदासजी का सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सूरसागर' है। 'सूरसारावली' और 'साहित्य-लहरी' उसी के अंश मात्र हैं। सूर की वृत्ति भागवत के अन्य स्कन्धों की कथा में उतनी नहीं रमी जितनी दशम स्कन्ध के कथानक पर जमी है। उसी में उनके आचार्य वल्लभ के प्रवर्तित 'पुष्टिमार्ग' में मान्य उपास्य श्रीकृष्ण की बाललीलाओं का वर्णन है। सूरदास ने श्रीकृष्ण के जन्म से ले कर उनके कंस को मारने के लिए मथुरा को प्रस्थान करने तक का चरित्र ही बहुत विस्तार से गाया है। कहीं कहीं एक ही प्रसङ्ग के इतने अधिक पद रचे हैं कि उनमें एक ही भाव प्रकारान्तर से कई बार व्यक्त हुआ है। सम्भव है नित्य ही कीर्तन के लिए लीला के वही वही प्रसङ्ग ग्रहण करने के कारण ऐसा हुआ हो। इन पदों में वात्सल्य और शृङ्गार के संयोग और वियोग—इन दोनों पक्षों—की अपूर्व योजना हुई है। बालक्रीड़ाओं का जैसा सूक्ष्म, यथातथ्य, हृदयग्राही एवं स्वाभाविक वर्णन सूर के पदों में मिलता है, वैसा किसी अन्य कवि की कृतियों में नहीं मिलता। उनके संयोग-शृङ्गार-सम्बन्धी पद अनूठे हैं ही, विप्रलम्भ शृङ्गार-विषयक उत्कृष्ट पद भी सहृदयों के कण्ठहार हैं। कवि ने नारी की वियोगजन्य मानसिक दशाओं का स्वाभाविक और सजीव वर्णन किया है। उनकी मार्मिक उक्तियाँ श्रीकृष्ण के अनन्य प्रेम से ओत-प्रोत हैं। सूर ने भगवद्विनय-विषयक पदों की भी रचना की है। इनमें भक्त की दीनता और भगवान की सर्वसमर्थता का पूरा रूप प्रस्तुत किया है। यद्यपि काव्य-विषय के क्षेत्र की व्यापकता की दृष्टि से सूरदास की रचना बहुत सीमित है, तथापि जिन विषयों को उन्होंने चुना था उनके वर्णन के लिए उनका अधिकार असीम है। उनके क्षेत्र में उनकी समता करने वाला हिन्दी का कोई दूसरा कवि नहीं है।

उनकी भाषा में सरसता, मधुरता और सरलता है। वह परिष्कृत और प्रौढ़ ब्रजभाषा है। उसमें अलङ्कारों की छटा सर्वत्र देखी जाती है, जिसमें उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ अनूठी हैं। सूर-काव्य में संगीत का तत्त्व सन्निविष्ट है। इसी से उसके सभी पद गेय हैं। उनके पद सीधे हृदय पर चोट कर के उसमें सदैव के लिए घर कर लेते हैं। तभी नाभादास ने कहा था कि 'श्री सूर कवित सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै ?'

३. मलिक मुहम्मद जायसी

जायसी का जन्म संवत् १५३१ के लगभग एक निर्धन मुसलमान वंश में हुआ था। वे जायस (जिला रायबरेली) के निवासी थे। वे बाल्यावस्था में शीतला या अर्धाङ्ग रोग से अपने बायें कान और आँख से रहित हो गये थे। कहते हैं, अपने पुत्र के मकान के नीचे दब कर मर जाने से वे विरक्त हो कर साधु-सन्तों के साथ रहने लगे थे। इस सत्संग से उन्हें सांसारिक विषयों की जानकारी प्राप्त हुई। उन्होंने प्रसिद्ध सूफी शेख मुहीउद्दीन से ज्ञानोपदेश लिया था। इसी कारण उनमें सूफियों की सी सहृदयता और विश्व-बन्धुता की भावना प्रादुर्भूत हुई और तज्जन्य उदारता और सारग्राहिणी बुद्धि के द्वारा उन्होंने हिन्दुओं के वेदान्त, हठयोग, रसायन आदि का ज्ञान भी अर्जित किया। वे अपने समय में सिद्ध फकीर माने जाते थे। उन्होंने संवत् १६०० के लगभग प्राण त्यागे। अमेठी के समीप मँगरावन में उनकी कब्र है।

जायसी ने 'पद्मावत', 'अखरावट', 'आखिरी कलाम' और 'कहरा-नामा' की रचना ठेठ अवधी भाषा में और अधिकतर दोहा तथा चौपाई छन्दों में की। 'पद्मावत' में वर्णित चित्तौर की महारानी पद्मिनी (पद्मावती) की कहानी में लोक-प्रचलित आख्यान, इतिहास, सम-कालीन घटनाओं और कल्पना का मनोहर समन्वय है। ऐतिहासिक आख्यान होते हुए भी यह काव्य सूफी साधना का भव्य उदाहरण है। इसमें सांसारिक प्रेम के भीतर सूफी साधना के अनुरूप ईश्वर और जीव

के रहस्यमय प्रेम की अभिव्यञ्जना है; मानव-चरित्र एवं भावों का मनोरम विश्लेषण है और साथ ही सूफियों को मान्य ईश्वरीय प्रेम, सौन्दर्य और आनन्द की सुन्दर झलक भी सर्वत्र है। कथा के निर्वाह तथा प्रसंगोचित भावों के संयोजन और वस्तुओं के संघटन आदि सभी बातों में 'पदमावत' प्रशंसनीय है। जायसी के प्रकृति-वर्णन से, विशेषतया विरह-व्यञ्जना और समुद्र-वर्णन से, यह विदित होता है कि वे वस्तुस्थिति की स्वाभाविकता का चित्रण करने में समर्थ थे। उन्होंने प्रेम या रति भाव के अतिरिक्त पातिव्रत, स्वामिभक्ति, वीर-दर्प आदि भावों की व्यञ्जना बहुत अच्छी की है। जायसी का प्रबन्ध-सौष्ठव भी सराहनीय है। उनके इस काव्य में व्यर्थ की बातें अधिक नहीं हैं। मानव-जीवन का कोई भी मार्मिक स्थल ऐसा नहीं, जिसका उद्घाटन कवि ने 'पदमावत' में न किया हो। 'पदमावत' में बोलचाल की अवधी का प्रयोग हुआ है। वह सरस, सरल और मधुर है। जायसी की भाषा में ग्रामीण नैसर्गिक सौन्दर्य है। इसी से वह हृदय में घर कर लेती है।

४. गोस्वामी तुलसीदास

राजापुर (बाँदा) के सरयूपारीण ब्राह्मण-कुल में तुलसीदासजी श्रावण शुक्ल ७ सं० १६०० में अवतीर्ण हुए। पत्यौंजा के दुबे महाभाग आत्माराम उनके पिता थे और हुलसी थीं माँ। दीक्षागुरु थे नरहर्यानन्द (नरहरिदास) तथा विद्या-गुरु शेष सनातन, जिनसे उन्होंने वेद, शास्त्र, दर्शन, पुराणादि का विधिवत् अध्ययन किया। कहते हैं अपनी पत्नी की फटकार से विरक्त हो वे चित्रकूट अयोध्या और काशी में रहे। उनका सारा समय राम के भजन, कीर्तन, उपदेश और साधुओं के सत्संग में व्यतीत हुआ करता था। त्यागपूर्ण, सरल और सात्विक जीवन व्यतीत करते हुए उस महापुरुष ने श्रावण कृष्ण ३ शनिवार सं० १६८० को काशी के अस्सीघाट से साकेत के लिए प्रस्थान किया। गोस्वामीजी रामानंदी सम्प्रदाय के वैष्णव थे। कुछ लोग 'मानस' में अभिव्यक्त उनकी अद्वैत-सिद्धांत-सम्बन्धी बहुत सी उक्तियों के आधार पर उन्हें

अद्वैतवादी सिद्ध करते हैं, परन्तु वे श्रीरामचन्द्र को परब्रह्म मानते थे तथा उनके साकार रूप के उपासक थे। उनकी उपासना साम्प्रदायिक ढंग की संकुचित न थी।

वैसे तो उनके नाम से अनेक काव्य प्रचलित हैं, किन्तु गोस्वामी तुलसीदास के रचे हुए सर्वमान्य काव्य हैं—रामचरित-मानस, कविता-वली, गीतावली, विनयपत्रिका, दोहावली, रामाज्ञा प्रश्न, रामललानहछू, पार्वती-मंगल, जानकी मंगल, बरवै रामायण, वैराग्य-संदीपनी और कृष्ण गीतावली। इनसे काव्य-विषय, भाषा और शैली पर उनके व्यापक अधिकार का पता चलता है। उन्होंने अपने समय में प्रचलित सब प्रकार की काव्यशैलियों में सफल काव्य-रचना की। राम के लोक-पावन चरित्र को अपना काव्य-विषय चुन कर उसमें मानव-जीवन की व्यापकता बड़ी सहृदयता एवं कुशलता से प्रदर्शित की। उनके काव्यों में तत्कालीन सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि सभी दशाओं के चित्र मिलते हैं। भक्ति, ज्ञान और वैराग्य में सामञ्जस्य स्थापित करके उन्होंने अव्यवस्थित लोकधर्म की मर्यादा फिर से बाँधी। शिव और राम को एक-दूसरे के उपास्य-उपासक बता कर उन्होंने उन दिनों के बढ़ते हुए शैव-वैष्णव द्वेष को मिटाया। साथ ही निर्गुण और सगुण का भेद भाव भी दूर किया। मानव-समाज के सम्मुख उन्होंने जीवन के सब प्रकार के आदर्श चरित्र वाले व्यक्ति रख कर लोगों को पथभ्रष्ट होने से बचाया। इस प्रकार गोस्वामीजी ने हिन्दू-समाज को पुनः मर्यादित किया एवं उसकी रक्षा की।

यद्यपि गोस्वामीजी ने अपने लिए कहा है कि 'कवि न होउँ, नहिं चतुर कहावउँ' तथापि उनसे श्रेष्ठतर कवि हमारी भाषा में अभी तक नहीं हुआ। काव्यशास्त्र के सभी लक्षणों से युक्त रचना करने में वे अद्वितीय थे। राग-रागनियों में गाये जाने योग्य अगणित सरस पदों की रचना करके उन्होंने अपना संगीत-शास्त्रज्ञ होना भी प्रमाणित किया है। उनकी कविता में भावों या रागों की व्यञ्जना करने तथा क्रिया का प्रभाव एवं उत्कर्ष बढ़ाने के लिए ही अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

भाषा की स्वच्छता, सरलता और शुद्धता में हिन्दी का कोई भी कवि तुलसीदास की समता नहीं कर सकता। उनकी कविता में कला के साथ ही हृदय- और लोक-पक्ष का समुचित मेल अनूठे ढंग से मिलता है। भारतीय कृष्टि (संस्कृति) और आर्यधर्मोचित मर्यादा के सच्चे तथा प्रभावोत्पादक प्रदर्शनकर्ता होने के नाते तुलसीदास भारतीय आर्यजाति के प्रतिनिधि कवि हैं। काव्य-शास्त्र की कसौटी पर कसने पर क्या भाषा, क्या वर्ण्य विषय, क्या उसके सम्यक् निर्वाह और क्या काव्य के स्थायी और लोकव्यापक प्रभाव आदि सभी दृष्टियों से वे खरे उतरते हैं। इन सब बातों से वे हमारी भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। विश्व के सर्वोत्तम कवियों की गिनती करते समय उनका नाम छिंगुनी में ही आता है।

५. केशवदास

केशवदास का जन्म ओड़छा में संवत् १६१२ में हुआ। वहाँ के तत्कालीन नरेश के अनुज इन्द्रजीतसिंह के आश्रय में रह कर उन्होंने राजसी वैभव से पूर्ण जीवन व्यतीत किया। उनके बनाये ग्रन्थों में रसिक-प्रिया, कविप्रिया, रामचन्द्रिका, वीरसिंहदेवचरित्र, जहाँगीर-जस-चन्द्रिका और विज्ञान-गीता उपलब्ध हो चुके हैं। रामालंकृत मञ्जरी, रत्नबावनी और नखशिख उनके अन्य ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इन ग्रन्थों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। कुछ में साहित्य-शास्त्र के भिन्न-भिन्न अंगों —रस, अलङ्कार, छन्द आदि—का विवेचन है और शेष में काव्य-पटुता का प्रदर्शन है। 'रसिक-प्रिया' में कवि ने नायिका-भेद एवं दाम्पत्य रति के भाव, अनुभाव, आलम्बन और उद्दीपन विभाव आदि का विस्तार से वर्णन किया है। 'कवि-प्रिया' में काव्य के भेद, काव्य के वर्ण्य विषय, काव्य-दोष, अलङ्कार आदि काव्य के विभिन्न अंगों का विवेचन है। इनके कारण केशव अपने बाद होने वाले रीति-कवियों की परम्परा में पहले आचार्य ठहरते हैं। हिन्दी के प्रबन्ध-काव्यों में केशव की 'राम-चन्द्रिका' बहुत प्रसिद्ध है। इसमें यद्यपि 'रामचरित-मानस' या 'पदमावत' की भाँति कवि को प्रबन्धकाव्योचित सफलता नहीं मिली, तथापि छन्दों

की विविधता, अलङ्कारों की प्रचुरता और चमत्कारपूर्ण उक्तियों की अधिकता इसके बराबर अन्य काव्यों में दुर्लभ हैं। ये तीन काव्य केशव की कीर्ति के स्मारक स्वरूप हैं। 'वीरसिंहदेवचरित्र' और 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' साधारण कोटि के चरित्र-काव्य हैं। इनमें तत्कालीन ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख है, जो बड़े ही काम का है। 'विज्ञान गीता' साधारण नाटक है। वास्तव में यह नाटक नहीं है, इसमें केवल पद्यात्मक कथोपकथन है।

केशवदास अलङ्कार को ही कविता का सर्वस्व मानते थे। रस-परिपाक की ओर ध्यान न दे कर वे अधिकतर शब्दों में आलङ्कारिक प्रयोगों के चमत्कार और उक्ति-वैचित्र्य के पीछे उलझे रहे। उन्होंने कहीं कहीं संस्कृत की बहुत-सी क्लिष्ट कल्पनाएँ अपना ली हैं और कहीं कहीं वे उन्हें स्पष्ट रूप में व्यक्त भी नहीं कर सके। जान पड़ता है इन्हीं कारणों से उन्हें 'कठिन काव्य के प्रेत' की उपाधि मिली थी। केशवदास विद्वान् थे, उनकी कल्पना-शक्ति बहुत तीव्र थी, भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था, उनमें शब्दों के श्लेषात्मक प्रयोग करने की अद्भुत क्षमता थी, राज-दरबार से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण उनका सांसारिक अनुभव बढ़ा-चढ़ा था तथा उनमें ऐश्वर्य और शक्ति के वर्णन करने की असाधारण योग्यता थी। मानवजीवन की भिन्न-भिन्न दशाओं को दिखाने में केशव पटु हैं। उनके लिखे कथोपकथनों के सदृश संवाद हिन्दी के बहुत कम कवियों की रचनाओं में मिलते हैं। वे प्राकृतिक सुषमा को देख कर अलङ्कारों की झड़ी-सी लगा दिया करते थे और उसकी नैसर्गिक सुन्दरता को अंकित करना कुछ भूल ही जाते थे। इसी से अनोखी सूझ या अलङ्कारों की योजना से युक्त होते हुए भी उनके अधिकांश प्रकृति-चित्रण अस्वाभाविक हो गये हैं।

६. सेनापति

सेनापति का जन्म संवत् १६४६ के लगभग अनूपशहर (बुलन्द-शहर में) हुआ था। वे पहले किसी मुसलमान बादशाह के आश्रित थे।

उसके यहाँ उनका आदर भी अच्छा था; परन्तु अन्त में उससे विरक्त हो कर क्षेत्र-संन्यास ले कर संभवतः अपने अंतिम दिनों में वे वृन्दावन में रहने लगे थे। श्रीकृष्ण की लीलाभूमि में रहते हुए भी उन्हें श्रीराम का इष्ट था। वे कहते हैं—'और न भरोसो जिय परत खरो सो ताहि, राम पद-पंकज को पूरन भरोसो है।' राम की भक्ति और लीला-विषयक रचनाओं में कवि की तल्लीनता स्पष्ट देखी जाती है। शृङ्गार, ऋतु, श्लेष आदि के वर्णन के साथ सेनापति के भक्ति-सम्बन्धी उद्गार सं० १७०६ में रचे उनके 'कवित्त रत्नाकर' नामक ग्रन्थ में संकलित हैं। कहते हैं उनका दूसरा ग्रन्थ है 'काव्य-कल्पद्रुम', जो अब तक मिला नहीं।

सेनापति की सम्पूर्ण कविता घनाक्षरी या कवित्त छन्द में है। अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि अलंकारों की प्रचुरता से युक्त होते हुए भी उनकी भाषा में बनावट नहीं है। कवि की रचना व्रजभाषा में है, उनका शब्द-विन्यास और पद-लालित्य मनोहर है। उनकी-सी सरस, सुसङ्गठित, सजीव और मँजी हुई भाषा बहुत कम कवियों ने लिखी है। वह माधुर्य और प्रसाद गुण से ओत-प्रोत है। उनकी उक्तियों में स्वतन्त्र सूझ पाई जाती है। अत्यन्त प्रभावपूर्ण होने से सेनापति की कविता बहुत प्रभावोत्पादिनी भी है। उनका षड्ऋतु-वर्णन हिन्दी के काव्य-क्षेत्र में अद्वितीय है। उसमें उनकी प्रकृति-पर्यवेक्षण की अद्भुत क्षमता का पता चलता है। उसमें प्रकृति के सूक्ष्म एवं संश्लिष्ट चित्रण का प्रयास नहीं है, किन्तु उसे शृंगार के उद्दीपन के रूप में ग्रहण किया गया है। उन्होंने प्रकृति के साथ मानव-भावनाओं का अपूर्व सामञ्जस्य स्थापित किया है। यत्र-तत्र ऋतुओं के व्यापारों की बहुत सूक्ष्म और संश्लिष्ट योजना भी की है। इन गुणों के कारण सेनापति-कृत षड्ऋतुओं का वर्णन अत्यन्त हृदयग्राही और लोकप्रिय है। उनके श्लेष हिन्दी-काव्य में अनुपम हैं।

सेनापति को केवल दो काम थे; 'रामै अरचतु सेनापति चरचतु दोउ कवित रचत याते पद चुनि-चुनि है।' उनके रामचरित-विषयक छन्द ओजस्वी और मर्मस्पर्शी हैं। उनमें उनकी दीनता देखते ही बनती है। परन्तु कहीं-कहीं पर वे अपने प्रभु से यहाँ तक कह गये हैं कि 'अपने

करम करि हौंही निबहौंगो तो हौंही करतार करतार तुम काहे के ?' उनके गंगा-विषयक कवित्त भी अनूठे हैं। उक्ति-वैशिष्ट्य में सेनापति का सामना विरले ही कर सकते हैं।

७. बिहारी

बिहारीलाल का जन्म संवत् १६७० के आसपास ग्वालियर के समीपवर्ती बसुवा-गोविन्दपुर गाँव में हुआ था। वे माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। कहते हैं, बाल्यावस्था में बुन्देलखण्ड में रहे और युवा होने पर अपनी ससुराल मथुरा में। बिहारी अपने एक दोहे के द्वारा जयपुर-नरेश महाराज जयसिंह के राजकवि हुए। उनके चुने हुए सात सौ से कुछ अधिक दोहे 'बिहारी सतसई' के नाम से प्रसिद्ध हैं। केवल इतने कम दोहों से उनकी साहित्य-संसार में ऐसी प्रसिद्धि है, जैसी तुलसी, कबीर और सूर के बाद किसी अन्य हिन्दी-कवि की नहीं है। सतसई ने यह सिद्ध कर दिया है कि किसी कवि का महत्त्व उसकी रचना के परिमाण से नहीं आँका जाता; किन्तु उसकी सच्ची कसौटी उस रचना का गुण है।

बिहारी की कविता का मुख्य विषय शृंगार था तथापि उन्होंने अन्य विषयों—भगवद्भक्ति, संसार की असारता, प्रकृति-सौंदर्य, नीति आदि—के भी कुछ दोहे-सोरठे लिखे हैं। अपनी भावुकता और रचना-कौशल से उन्होंने दोहा के सदृश छोटे छंद में बहुत से भाव भर दिये हैं और वर्ण्य विषय का मूर्त रूप आँखों के सामने खड़ा कर दिया है। अलङ्कारों की कारीगरी दिखाने में बिहारी पूर्ण पटु थे। उन्होंने प्रेम-विषयक भावों, विभावों और अनुभावों का सजीव चित्रण किया है। साधारण सी बात बहुत चमत्कार के साथ कही है। उनके बहुत से दोहों में केवल वाक्-चातुर्य है, कोई भाव या रस नहीं। नीति- या विरह-संबंधी दोहों में यह बात अधिक लक्षित होती है। उनको प्रकृति का भी बहुत अच्छा अनुभव था। उनके द्वारा अंकित प्रकृति के चित्र बहुत सुन्दर हैं। और मानव-प्रकृति के, विशेष कर प्रेम के वर्णन में तो वे अद्वितीय थे।

बिहारी की ब्रजभाषा में बुन्देलखंडी, उर्दू-फारसी आदि के शब्दों का भी यत्र-तत्र प्रयोग हुआ है। कवि-स्वातन्त्र्य से उसमें शब्दों की तोड़-मरोड़

भी खूब है। उनका शब्द-प्रयोग नियमित और वाक्य-विन्यास व्यवस्थित है। वे शृंगार के रचनाकारों में बहुत प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित हैं।

८. भूषण

भूषण संवत् १६७० के आसपास तिकवाँपुर (जिला कानपुर) में उत्पन्न हुए। उनकी रचनाओं से जान पड़ता है कि वे बहुत से राजाओं के आश्रय में रहे थे; किन्तु बहुत दिन तक किसी से संतुष्ट नहीं हुए। अन्त में छत्रपति शिवाजी उनकी कविता-कामिनी के लिए उपयुक्त नायक मिले। कुछ लोग भूषण को शिवाजी के पौत्र साहूजी का दरबारी कवि कहते हैं। शिवाजी और छत्रसाल ने उनको बहुत सम्मानित और पुरस्कृत किया था। संभवतः संवत् १७७२ में उन्होंने इस लोक की लीला समाप्त की।

भूषण के बनाये हुए काव्य-ग्रन्थ हैं : 'शिवराज-भूषण', 'शिवाबावनी' और 'छत्रसाल-दशक'। 'शिवराज-भूषण' में पहले अलंकारों की परिभाषा दोहों में दे कर उनके उदाहरण-स्वरूप शिवाजी की प्रशस्ति-संबंधी दण्डक-वृत्तों की रचना हुई है, जिनमें छत्रपति के जीवन के भिन्न-भिन्न महत्त्वपूर्ण कार्यों और वृत्तान्तों का ओजपूर्ण उल्लेख है। 'शिवाबावनी' में भी अत्यन्त ओजस्वी छन्दों में शिवाजी की वीरता का वर्णन है। 'छत्रसाल दशक' में छत्रसाल का प्रभावशाली शौर्य प्रदर्शित है। ये तीनों काव्य वीर रस से सराबोर हैं। इनमें ओज की अपरिमित मात्रा है। भूषण की भाषा प्रधानतया ब्रजभाषा है। उसमें वीररसोपयुक्त प्राकृत शब्दों का पुट बहुत अच्छा है। साथ ही बुन्देलखंडी, फारसी, अरबी, तुर्की आदि के शब्दों का प्रयोग भी उपयुक्त स्थलों पर हुआ है। वीर रस के अनुरूप ओजस्विनी होने पर भी भूषण की भाषा निर्दोष नहीं। उसमें तत्कालीन रीति-कविताओं की-सी न तो सफाई है और न काव्योत्कर्ष को बढ़ाने वाली कारीगरी ही। परन्तु उसमें सादगी, स्पष्टता और अक्खड़ता अवश्य है। इसी से उनकी कविता जन-साधारण को इतनी रुचिकर है। वह वीर-रस का सम्यक् सञ्चार करने में सर्वथा समर्थ है।

९. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

साहित्यवाचस्पति हरिऔधजी का जन्म वैशाख कृष्ण ३ संवत् १९२२ को निजामाबाद (आजमगढ़) में और निधन ६ मार्च १९४७ (सं० २००४) को ८२ वर्ष की आयु में आजमगढ़ हुआ। मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण कर उन्होंने कुछ दिनों तक काशी में अँगरेजी का अध्ययन किया। फिर घर पर ही उर्दू, फारसी और संस्कृत पढ़ी। कुछ दिन अध्यापन कर के अन्त में सदर कानूनगो के पद पर बहुत दिनों तक काम कर के पेंशन ली। तत्पश्चात् सन् १९२३ से १९४१ तक हिन्दू विश्वविद्यालय काशी में हिन्दी साहित्य के अवैतनिक अध्यापक रहे। वहाँ से हटने के अनन्तर वे अन्त समय तक आजमगढ़ में रहे।

हरिऔधजी के गुरु निजामाबाद के सिक्ख साधु बाबा सुमेरसिंह ने उन्हें कविता करने की प्रेरणा दी। पहले उन्होंने ब्रजभाषा की पुराने ढंग की कविता करना आरम्भ किया। उनकी इस काल की कविता 'रस-कलश' में संकलित है। आगे चल कर खड़ी बोली में 'प्रिय-प्रवास' महाकाव्य लिखा, जिसमें श्रीकृष्ण के बालचरित्र का वर्णन है। इस काव्य में श्रीकृष्ण को लोक-रक्षक और राधा को लोक-सेवा में परायणा दिखलाया गया है। इसमें वात्सल्य और शृंगार के साथ मानव-प्रकृति का मनोमोहक और सुन्दर वर्णन है। प्रकृति के व्यापार को उद्दीपन के रूप में अंकित किया गया है। इसके अतुकान्त संस्कृत वृत्तों की कोमल कांत संस्कृत-गर्भित समस्त पदावली अभूतपूर्व है। उसमें ब्रजभाषा के कुछ क्रियापदों अव्ययों आदि का भी यत्र-तत्र प्रयोग हुआ है।

ऐसी संस्कृत-निष्ठ रचना के बाद हरिऔधजी ने बोलचाल की भाषा में 'बोल-चाल', 'चुभते-चौपदे', 'चोखे-चौपदे' आदि में अगणित चौपदे लिख कर मुहावरों और ठेठ बोली का ठाठ प्रदर्शित किया। इनमें उन्होंने उर्दू छन्दों में सरल शब्दों के द्वारा लोकहित तथा समाज-कल्याण के भाव व्यक्त किये हैं। इन चौपदों में कुछ बालकों के लिए भी हैं। 'पद्यप्रसून' में उनकी बोल-चाल की और साहित्यिक प्रौढ दोनों प्रकार की भाषाओं की कविताएँ संगृहीत हैं।

'वैदेही-वनवास' उनका दूसरा प्रबन्ध काव्य है, जिसमें लोकापवाद के कारण रामचन्द्र के द्वारा दिये जानकी के वनवास का करुण वर्णन है। इसका कथानक प्राचीन संस्कृत-काव्यों से कहीं-कहीं भिन्न है। वह कवि की उद्भावना है। इसमें पति-परायणा नारी के उदार भावों के निर्वाह का ध्यान रखा गया है और वर्तमान युग के विचारों का भी समावेश है। प्रकृति के संश्लिष्ट चित्र भी हैं। इसकी भाषा संस्कृतनिष्ठ होते हुए भी 'प्रियप्रवास' की भाषा की अपेक्षा सरल है। इसके वृत्त हिन्दी के हैं। उनमें अलंकार-योजना का भी ध्यान रखा गया है।

इस प्रकार अयोध्यासिंहजी में कवित्व शक्ति के साथ नवीन विषयों की उद्भावना करने की अपूर्व क्षमता थी। आधुनिक विचारों से युक्त उनकी नवीन योजनाओं में भी आकर्षण है। भाषा के विविध रूपों पर उनके समान आजकल के किसी दूसरे कवि का अधिकार नहीं। मुहावरेदार सरल और संस्कृत-गर्भित दोनों प्रकार की खड़ी बोली के साथ ही मँजी हुई ब्रजभाषा में वर्तमान समय के अनुकूल भावों की सुन्दर और लोककल्याण-कारिणी अभिव्यञ्जना करने के कारण हरिऔधजी नवीन युग के सर्वश्रेष्ठ कवि थे।

१०. जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

रत्नाकरजी भाद्रपद शुक्ल पंचमी संवत् १९२३ को काशी में उत्पन्न और आषाढ़ कृष्ण तृतीया संवत् १९८९ को हरद्वार में स्वर्गवासी हुए थे। बाल्यावस्था से ही उन्हें कविता से प्रेम था। उन्होंने आरंभ में 'जकी' तखल्लुस से उर्दू में कुछ कविता की थी; किन्तु बाद में, ब्रजभाषा में कविता की। उनकी भाषा मँजी हुई, रोचक और मधुर होती थी। उसमें प्रसाद, माधुर्य और ओज तीनों गुण पाये जाते थे। यद्यपि उन्होंने कहीं-कहीं पर बनारस की ओर के कुछ पूरबी शब्दों का प्रयोग भी अपनी कविता में किया है, फिर भी उनको ऐसे अच्छे ढंग से ब्रजभाषा के साँचे में ढाल दिया है कि वे खटकते नहीं। उन्होंने पुराण महाभारत आदि से ले कर प्रायः ऐसे पुराने विषयों पर ही कविता की थी, जिनपर अनेक

संस्कृत और हिन्दी के कवियों ने उच्चकोटि की कविता की है। फिर भी भावों को व्यक्त करने की उनकी स्वतन्त्र शैली अपनी थी। अपनी सूक्ष्म और उक्तिविचित्रता के द्वारा उन्होंने पिष्टपेषित विषयों में भी नवीन चमत्कार पैदा कर दिया है। उनके काव्यों में रसों की योजना भी बहुत अच्छी हुई है। वे प्रधानतया शृंगार रस के कवि थे। उनके 'शृंगार-लहरी' और 'उद्धव-शतक' नामक काव्यों में इसकी छटा देखी जाती है; यद्यपि उनके 'हरिश्चन्द्र' में बीभत्स तथा करुण की एवं 'वीराष्टक' में वीर-रस की भी अच्छी योजना हुई है। रत्नाकरजी में वर्ण्य-विषय का प्रतिरूप प्रस्तुत करने की भी अद्भुत क्षमता थी। उन्होंने 'गंगावतरण' में गंगा के स्वर्ग से उतरने का दृश्य बहुत सफलतापूर्वक दिखाया है। उन्होंने प्रकृति का वर्णन भी किया है, किन्तु वह अधिकतर रीति-कालीन कवियों का-सा हुआ है। फिर भी उनके 'रत्नाष्टक' के अन्तर्गत वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, प्रभात, संध्या आदि के वर्णनों में कहीं कहीं पर प्रकृति का संश्लिष्ट चित्र भी देखने को मिल जाता है। अलंकारों की कारीगरी भी उनकी कविता में बहुत अच्छी देखी जाती है। आधुनिक युग के पुरानी शैली के व्रजभाषा-कवियों में वे सर्वश्रेष्ठ थे।

११. मैथिलीशरण गुप्त

साहित्यवाचस्पति डाक्टर मैथिलीशरण गुप्त का जन्म श्रावण शुक्ला तृतीया, संवत् १९४३ को चिरगाँव (झाँसी) में हुआ और मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीया सं० २०२१ को उन्होंने देह त्यागी। वे श्री-सम्प्रदाय के अनुयायी रामोपासक श्रीवैष्णव थे। भारतीय कृष्टि के अभिमानी होने के साथ ही आधुनिक जाग्रति के पोषक थे। सम्मेलन ने उन्हें साहित्यवाचस्पति तथा आगरा विश्वविद्यालय ने डी० लिट्० की उपाधि दी थी।

गुप्तजी वाग्देवी की आराधना में निरंतर लगे रहते थे। उन्होंने मौलिक और बँगला संस्कृत एवं अँगरेजी से अनूदित, दोनों प्रकार के काव्य रचे थे। बँगला के लब्ध-प्रतिष्ठ कवि माइकेल मधुसूदन दत्त के

'विरहिणी व्रजांगना' 'वीरांगना' और 'मेघनाद वध' तथा श्रीनवीनचन्द्र सेन के 'पलासीर युद्ध' के अनुवाद 'मधुप' उपनाम से किये थे। संस्कृत के नाटककार भास के नाटक 'स्वप्नवासवदत्तम्' का रूपान्तर किया था। फारसी के कवि उमर खैय्याम की रुबाइयों के अँगरेजी अनुवाद को हिन्दी का रूप दिया था। 'तिलोत्तमा' और 'चन्द्रहास' नाटक के अतिरिक्त उनके मौलिक काव्य हैं—'रंग में भंग', 'जयद्रथ-वध', 'भारत-भारती', 'शकुन्तला', 'पत्रावली', 'वैतालिक', 'किसान', 'अनघ', 'पंचवटी', 'हिन्दू', 'शक्ति', 'गुरुकुल', 'विकट भट', 'सैरन्ध्री', 'वन-वैभव' 'वक-संहार', 'हिडिम्बा', 'कुणालगीत', 'साकेत', 'यशोधरा', 'द्वापर' 'सिद्ध-राज', 'नहुष', 'काबा और कर्बला', 'प्रदक्षिणा', 'अञ्जलि और अर्घ्य' 'पृथिवी पुत्र' आदि। 'पद्य-प्रबन्ध', 'झंकार' और 'विश्व वेदना' उनकी फुटकल कविता के संग्रह हैं।

उपर्युक्त रचनाओं में कुछ में तो राम, कृष्ण, बुद्ध, सिक्ख-गुरु आदि प्राचीन एवं मध्ययुगीन महापुरुषों की महिमा का गान गाया गया है और कुछ में देश की वर्तमान स्थिति और राष्ट्रीय भावना के उत्तरोत्तर विकास की अभिव्यक्ति हुई है। गुप्तजी की 'भारत-भारती' बहुत लोकप्रिय हुई थी। उनकी प्रारंभिक रचनाओं में 'जयद्रथ-वध' में भाषा की प्रौढ़ता और अलंकृत उक्तियों के साथ वीर और करुण रस का चित्ताकर्षक सम्मिलन और निर्वाह हुआ है। 'पंचवटी' में गुप्तजी की कवित्व शक्ति का विकास देखा गया है। 'साकेत' उनकी सर्वोत्तम कृति है। इसकी गणना खड़ी बोली के सर्वश्रेष्ठ काव्यों में की जाती है। 'यशोधरा', 'द्वापर' और 'सिद्धराज' में गुप्तजी की प्रौढ़ कवित्व-शक्ति देखी जाती है। इन तथा अन्य काव्यों में, जिनकी कथावस्तु रामायण, महाभारत, पुराण, इतिहास आदि से ली गयी है, गाँधीजी के द्वारा प्रेरित वर्तमान युग की चेतना और विचार अभिव्यक्त हुए हैं। गुप्तजी पुराने आदर्शों के साथ नवयुग के प्रभाव अपनी कृतियों में निरंतर ग्रहण करते रहे हैं। उन्होंने 'झंकार' में संगृहीत कविताओं में रहस्यात्मक भाव भी प्रकट किये हैं। वे गाँधीवाद से अधिकाधिक प्रभावित होते गये। उनकी कृतियों में

मानव के प्रति उदारता की उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है और आज उसमें मानव के प्रेम और महत्ता की भावना पूर्णतया व्याप्त है। प्राचीन परिपाटी के राम-भक्त गुप्त जी की इधर की रचनाओं में आधुनिक मानववादी विचारों की प्रमुखता है। उनकी रचनाओं के राम और कृष्ण ईश्वरावतार होते हुए श्रेष्ठ मानव हैं। वे पृथ्वी पर स्वर्गीय साम्राज्य की स्थापना करने आये थे मनुष्य हो कर। गुप्तजी की व्याकरण-सम्मत भाषा में शब्द-सङ्घटन, वाक्य-विन्यास और पद-लालित्य की पूरी मात्रा रहती है। कहीं कहीं उनकी रचना पद्यात्मक या तुकबन्दी मात्र रह गयी है।

१२. जयशंकर 'प्रसाद'

प्रसादजी का जन्म काशी में माघ शुक्ला दशमी संवत् १६४६ को और शरीरान्त वहीं केवल ४८ वर्ष की अल्पायु में कार्तिक शुक्ला एकादशी १६६४ को हुआ। उन्होंने घर पर ही अध्ययन करते हुए संस्कृत, फ़ारसी, अँगरेजी, उर्दू आदि में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। अन्तिम दिनों में उन्हें क्षय हो गया था। इसी रुग्णावस्था में उनका महाकाव्य 'कामायनी' पूर्ण हुआ था जो उनके शरीरान्त के बाद मंगलाप्रसाद पुरस्कार से पुरस्कृत हुआ था।

प्रसादजी ने भारत के प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व, एवं दर्शन का अध्ययन किया था। अपने निबंधों, नाटकों, कहानियों आदि में स्वतन्त्र अनुसंधान और अतीत के चित्रण की चेष्टा की थी। बाल्यावस्था से ही उनका रुझान कविता की ओर था। पहले उन्होंने ब्रजभाषा को अपनाया था। 'प्रेम-पथिक', 'महाराणा का महत्त्व' आदि उनकी आरम्भिक कविताएँ वर्ण्य विषय और शैली की दृष्टि से नवीनता-समन्वित नहीं थीं। बाद में उन्होंने रहस्यमयी सुन्दर रचनाएँ कीं। वे आधुनिक युग में रहस्यवादी कवियों में प्रमुख हैं। भावों की गहनता, विचारों की दार्शनिकता, भाषा की दुरूहता और भावाभिव्यञ्जन की परम्परागत शैली से भिन्न रचना-विधि के कारण ऐसी कविताओं में कुछ अत्यन्त क्लिष्ट हो गयी

हैं, इससे उनके द्वारा आनन्द का अभीष्ट संचार नहीं होता; किन्तु जिनमें दार्शनिकता और भाषा की क्लिष्टता कम है वे अधिक मनोहर हैं। प्रसादजी की कविता में भावुकता मर्मस्पर्शिनी है। उनके नाटकों में प्रयुक्त अधिकतर गीत जी को लुभाते हैं। 'आँसू' में स्वच्छन्द प्रेम के उद्‌गार व्यक्त हुए हैं। 'कानन-कुसुम', 'झरना' और 'लहर' मार्मिक गीतों और कविताओं के संग्रह हैं। 'कामायनी' महाकाव्य में उपनिषदों में वर्णित सृष्टि-रचना के आधार पर मनु और वैदिक काल की विचारावलि का विशद और मनोरम वर्णन है। साथ ही आधुनिक युग के विचारों और सङ्घर्षों का भी समावेश है। हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यों में 'कामायनी' को सबसे श्रेष्ठ माना जाता है।

प्रसाद की भाषा में संस्कृत के तत्सम और कुछ उनके पूर्व तक की हिंदी कविता में अप्रचलित शब्द प्रयुक्त हुए हैं। उनकी लाक्षणिकता और व्यञ्जना भी क्रमशः बढ़ती गयी है। वह थोड़े शब्दों में बहुत से भावों को अभिव्यक्त करने से अर्थ-गाम्भीर्य से पूर्ण और कहीं-कहीं क्लिष्ट भी हो गयी है। उनके कुछ प्रयोग व्याकरण और मुहावरे की दृष्टि से अशुद्ध और असङ्गटित भी हो गये हैं। परन्तु ऐसे प्रयोग अधिक नहीं हैं। प्रसाद ने मुक्तक और प्रबन्ध दोनों प्रकार की काव्य-रचना के फल-स्वरूप रहस्यवादी कवियों में प्रमुखता प्राप्त की थी। नाटक, कहानी, उपन्यास, निबन्ध आदि के रचना-क्षेत्र में भी उनकी प्रतिष्ठा है।

१३. माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा'

चतुर्वेदीजी सं० १९४५ में होशंगाबाद (मध्यप्रदेश) के बाबई गाँव में उत्पन्न हुए। कुछ दिन अध्यापन करने के पश्चात् आप स्व० गणेश-शंकर विद्यार्थी के साथ 'प्रताप'-परिवार में रहे और राष्ट्र के अनन्य पुजारी बने। वहीं 'प्रताप' और 'प्रभा' के सम्पादक रहे। तदनन्तर पहले जबलपुर से और पीछे खँडवा से अब तक प्रकाशित हो रहे 'कर्मवीर' के सम्पादक हुए और मध्यप्रदेश में असहयोग आन्दोलन के सञ्चालकों में

प्रमुख रहे। सन् १६२१ और १६३० में जेल भी गये। वे सम्मेलन के सभापति हो चुके हैं और उसके द्वारा साहित्यवाचस्पति उपाधि से सम्मानित हैं। उनकी रचनाओं पर विन्ध्यप्रदेश का 'देव पुरस्कार' मिल चुका है। भारत सरकार से सर्वप्रथम साहित्य-पुरस्कार हिंदी के साहित्यकारों में उन्हीं को मिला है। इससे साहित्य के क्षेत्र में उनके कृतित्व की प्रतिष्ठा का अनुमान किया जा सकता है।

चतुर्वेदीजी लेखनी और वाणी दोनों के धनी हैं। उनका ओजस्वी भाषण बहुत ही अलंकृत और ललित होता है। श्रोता मन्त्रमुग्ध हो उपमाओं, उत्प्रेक्षाओं और रूपकों के प्रवाह में पड़ अपने को भूल जाता है। उनके गद्य की छटा भी निराली है। 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक तथा 'कला का अनुवाद' कहानी-संग्रह में सरल और सरस भाषा का प्रवाह है तो 'साहित्य देवता' के निबन्ध भावुकता, लाक्षणिकता, वक्रता और व्यंग्य से पूर्ण चित्रात्मक कवित्व का अनुपम आकर हैं। इन निबन्धों में भावावेशपूर्ण गद्य-काव्य तथा गद्यगीत और चिन्तनप्रधान कवित्वमय गद्य के द्वारा उद्‌गारों की अभिव्यक्ति हुई है। इसकी सूक्तियाँ अनूठी हैं और शिलष्ट पदावली असाधारण है। वक्तृता और गद्य-कृति में काव्यमयी अलंकृत भाषा के कुशल शिल्पी चतुर्वेदीजी की कुछ कविताएँ 'हिमकिरीटिनी', 'हिम तरंगिनी' और 'माता' में संगृहीत हैं। प्रणय, देश-प्रेम और प्रकृति के प्रति अनुराग उनकी कविता के प्याले में छलकता रहता है। राष्ट्र के दासत्व की शृंखला को तोड़ने के लिए गाँधीजी ने जो मार्ग दिखलाया उसपर चल कर कवि ने 'हिमकिरीटिनी' में भारतमाता की अर्चना के जो गीत गाये हैं उनमें भारतीय आत्मा मुखरित हो उठी है। इन कविताओं में जहाँ असहयोग-काल की भीषण यातनाओं को हँसते हुए झेलने तथा भारतमाता की मुक्ति के लिए सिर चढ़ाने का उत्साह है वहीं आज स्वतंत्रता पा जाने पर उसके फल के भोगने में लिप्त कर्तव्यविमुख कुछ देशवासियों के प्रति वेदनामय खीझ भी कम मर्मस्पर्शिनी नहीं है। इनकी देशभक्ति की तन्मयता और मस्ती में युग की चेतना ही साकार नहीं हुई, अपितु आध्यात्मिकता भी समायी हुई है। वयोवृद्ध होने पर भी

चतुर्वेदीजी की कविता में तारुण्य का उत्साह है और अपने सामने आयी हुई बाधाओं के पर्वत को विदीर्ण कर बहा ले जाने वाला उमंगपूर्ण प्रवाह। निजी अनुभूतियों के सार्वजनिक भावना के रूप में व्यक्त प्रणय के राग और रेवा (नर्मदा) के तट तथा सातपुड़ा की पहाड़ियों के वनों की प्राकृतिक सुषमा के गीत गाते समय भी उनमें वही तन्मयता है जो राष्ट्र के जागरण और बलिदान के स्वर झंकृत करते समय। चतुर्वेदीजी की शैली में लक्षणा और व्यञ्जना का विशेष चमत्कार है। वे संस्कृत-पदों के साथ सरल और चलते उर्दू-शब्दों का प्रचुर प्रयोग करते हैं, जो भाषा में शुद्धतावादियों को खटकते हैं, परन्तु यह उनकी अपनी शैली है जो अपनी ओर खींचने में सर्वथा समर्थ है। उनके वाक्य-गठन और शब्द-रूपों में कहीं-कहीं व्याकरण-सम्बन्धी स्खलन भी मिलता है; परन्तु वह भावों के प्रवाह और वर्णन-वैशिष्ट्य के कारण तत्काल ही पकड़ में नहीं आता। सब बातों को देखते हुए 'एक भारतीय आत्मा' आधुनिक कवियों में बड़े ही शक्तिशाली और आकर्षक हैं।

१४. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

'यथा नाम तथा गुण' की प्रतिमूर्ति निरालाजी माघ शुक्ला ११, सं० १९५५ को मेदिनीपुर (बंगाल) के महिषादल नगर में उत्पन्न हुए। वहीं के राजा के कर्मचारी अपने पिता के साथ बंगाल में ही उनका शैशव और यौवन व्यतीत हुआ। बँगला में ही उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई। उसमें उनकी अद्भुत गति भी थी। वे उसमें पहले तो कविता करते ही थे, इधर भी उन्होंने उसी में कविता रची है जो 'अणिमा' में संकलित विजय लक्ष्मी पंडित के प्रति है। अपनी सहधर्मिणी की प्रेरणा से तुलसीकृत 'रामचरितमानस' के सूत्र से हिन्दी पढ़-लिखकर बँगला के गंभीर अध्ययन के फलस्वरूप परमहंस रामकृष्णदेव और स्वामी विवेकानंद के वेदांत और राष्ट्रप्रेम, रवीन्द्र के सौन्दर्य-प्रेम और बंकिमचंद्र के मार्मिक व्यंग्य और परिहास का प्रभाव ले कर वे हिन्दी-साहित्य के आकाश में अलौकिक प्रकाश के साथ 'मतवाला' के माध्यम से सहसा उदय हुए। इसके पूर्व

वे 'समन्वय' का सम्पादन करते समय रामकृष्ण मिशन में प्राप्त वेदान्त का ज्ञान प्रकट कर चुके थे। उन्होंने कविता में दार्शनिकता का पुट दे कर भारतीय रहस्यवाद की परम्परा का निर्वाह किया। उनकी कविता में ओज का अपना वैशिष्ट्य है। वे नयी कविता में मुक्त या स्वच्छन्द छंद के प्रवर्तक हुए, जिसमें अंत्यानुप्रास मात्रा या वर्ण के बंधन नहीं होते, परन्तु लय रहती है। उन्होंने आगे चल कर उर्दू बहरों में भी कविता की।

काव्यशैली के सदृश उसकी विषय-वस्तु में भी कवि का निरालापन दर्शनीय है। भारतीय दर्शन और अध्यात्म तथा तुलसी से प्रभावित भक्ति के मधुर भाव ही उनकी कविता के विषय हैं, जिनमें उनकी वृत्ति सर्वाधिक रमती हुई प्रतीत होती है। उन्होंने वर्तमान सामाजिक तथा आर्थिक शोषण और उत्पीडन से मर्माहत जनता की वेदना का चीत्कार भी सुनाया। साथ ही देश के अतीत एवं वर्तमान राष्ट्रीय जागरण का शंख भी फूँका। उन्होंने शृंगार की मिलन और वियोग-जन्य कोमल भावनाएँ व्यक्त कीं और वैराग्य वृत्ति का भी प्रदर्शन किया। इस प्रकार जहाँ वे छायावाद और दार्शनिक रहस्यवाद की अभिव्यक्ति करने में समर्थ हुए, वहीं उन्होंने ऐसी कविताएँ भी लिखीं जो प्रगतिवाद के भीतर ली जाती हैं। स्वयं संगीत के मर्मज्ञ होने से उनकी कविता में गेय तत्त्व की प्रधानता है।

उनके कविता-संग्रह हैं—परिमल, गीतिका, अनामिका, अणिमा अर्चना, आराधना, वेला, नये पत्ते और गीत गुंज। 'कुकुरमुत्ता' में पूँजीवाद के प्रतीक गुलाब को लक्ष्य कर व्यंग्य काव्य का सौंदर्य मिलता है और 'तुलसीदास' मनोवैज्ञानिक प्रबंध है, जिसमें उनकी सांस्कृतिक चेतना मुखरित हुई है। इस प्रकार कल्पना की उड़ान, भावों की विशदता और नवयुग के जागरण के साथ रचना-शैली की नवीनता तथा शब्दों की पच्चीकारी का मणि-काञ्चन संयोग निरालाजी की कला की विशेषता है। इसी से वे आज के कवियों में मूर्धन्य थे।

आश्विन शुक्ला ४ सं० २०१८ को प्रयाग में उनका देहावसान हुआ।

१५. सुमित्रानन्दन पन्त

पन्तजी का जन्म संवत् १६५८ में अलमोड़ा के कौसानी गाँव में हुआ। उनकी शिक्षा अलमोड़ा, काशी और प्रयाग में हुई। अँगरेजी संस्कृत और बँगला के साहित्य में उनकी पैठ है। उनको दर्शन उपनिषद् आदि से विशेष प्रेम है। इनके अध्ययन के साथ ही रवीन्द्रनाथ टाकुर और श्रीअरविन्द के साहित्य का भी उन्होंने अध्ययन किया है। वे पहले रूसी समाजवाद तथा आगे चल कर गाँधीवाद से भी प्रभावित हुए। इधर स्वतंत्र देश की नेहरू-विचारधारा में प्रवाहित हो रहे हैं। इन सब विचारों को अपना कर पन्तजी की कविता उत्तरोत्तर विकसित हुई है।

सन् १६१७-१८ से उनका कविता-काल आरम्भ होता है। अब तक उनकी कविताओं के संग्रह पल्लव, वीणा-ग्रन्थि, गुञ्जन, युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, युगपथ, उत्तरा और अतिमा के नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। इन्हीं संग्रहों से पल्लविनी और आधुनिक कवि (२) की कविताओं का चयन हुआ है। 'स्वर्णधूलि' में उद्धृत 'मानसी' के अतिरिक्त उन्होंने कई काव्यरूपक भी रचे हैं, जो आकाशवाणी के द्वारा प्रसारित हो चुके हैं। ये 'रजतशिखर' तथा 'शिल्पी' नाम से पुस्तकाकार प्रकट हुए हैं। पंत-रचित 'पाँच कहानियाँ' और 'ज्योत्स्ना' नाटक तथा 'गद्यपथ' साहित्यिक निबंध भी प्रकाशित हो गये हैं। 'मधु-ज्वाल' में उन्होंने खैयाम की रुबाइयों का रूपान्तर प्रस्तुत किया है। उनकी विविध प्रकार की कृतियों में कवित्व और सुकुमार वृत्तियों की प्रमुखता है।

पंतजी ने हिमालय की रमणीक घाटी के प्राकृतिक सौंदर्य के बीच जन्म लिया और अपना शैशव तथा बाल्यकाल व्यतीत किया। उसकी मनोहर सुषमा ने उन्हें बाल्यकाल में ही मुग्ध कर लिया था। उन्होंने तारुण्य काल में उसमें नारी के सहज लावण्य की भी झलक देखी। अतः प्रकृति का यही रमणीय चित्र उनकी तूलिका ने पहले-पहल खींचा। हिमालय की भव्यता ने उन्हें ऊर्ध्व का चिन्तन करने की प्रेरणा दी। वे रह रह कर भौतिक आकर्षण से आध्यात्मिक चिन्तन की भूमि में उड़

कर सरस रहस्यात्मक कविताएँ रचने लगे। 'ग्रन्थि' में जिस वैयक्तिक निराशा से पूर्ण प्रेम की व्यञ्जना हुई है वह 'पल्लव' और 'गुञ्जन' की कुछ कविताओं में छिपी है। किन्तु अब तक अपनी कल्पना के लोक में मग्न कवि आगे चल कर 'युगान्त' और 'युगवाणी' के गीतों में समाज और देश की तत्कालीन स्थिति से प्रभावित हो कर, अपनी कोमल कान्त पदावली का मोह छोड़ कुछ जनवादी हो गया। उसकी वीणा से सामाजिक और आर्थिक विषमता के प्रति विद्रोह के राग झंकृत हुए और मार्क्स-वाद तथा गाँधीवाद की प्रतिध्वनि सुनायी पड़ी। 'ग्राम्या' में भी इसी प्रगति के पद-चिह्न हैं। परंतु इन वादों के प्रचार में कवि की वृत्ति अधिक दिन तक न रमी। उन्होंने अध्यात्मविहीन जीवन को अपूर्ण समझा और श्रीअरविंद के दर्शन के आलोक से जगत् के नवनिर्माण की झलक देखी। आज वे अपनी सौंदर्य-प्रियता की प्रारम्भिक प्रवृत्ति लिये हुए, स्वतंत्र देश के लिए नवीन आकांक्षाओं और सम्भावनाओं को मूर्त्त रूप देने में संलग्न हैं।

उनकी कविता में भावना और कल्पना का मधुर मिलन हुआ है। उनकी सी कोमलता, सुस्वरता और मधुरता अन्य कवियों की रचना में कम मिलेगी। पन्तजी वर्ण्य विषय के रम्य चित्र प्रदर्शित करने में भी समर्थ हैं। उनकी भाषा में लाक्षणिक प्रयोगों, ध्वन्यात्मक शब्दों और चित्रमय वर्णनों का प्राचुर्य है। उनकी कविता में संस्कृत शब्दों की प्रधानता होती है। कुछ शब्दों के लिङ्गों के विषय में उन्होंने कहीं-कहीं 'व्याकरण की लोहे की कड़ियाँ' भी तोड़ी हैं। जैसे 'उमड़ो हिम जल सस्मित-भोर' या 'जिसकी अविकच दुर्बलता ही थी उसकी शोभालङ्कार' (पल्लव) या 'बरसो शोभा की घन' (उत्तरा)। उन्होंने कुछ शब्द पूरे रूप में नहीं प्रयुक्त किये। यथा, अनिर्वचनीय के स्थान पर अनिर्वच, हरसिंगार के लिए सिंगार आदि। उनकी कुछ कविताओं में 'सा' अथवा 'रे' का निरर्थक प्रयोग हुआ है। परन्तु इन दोषों से उनकी कविता की कमनीयता में विशेष कमी नहीं आयी। वे आज के कवियों के मध्य बहुत ऊँचे स्थान पर विराजमान हैं।

१६. श्रीमती महादेवी वर्मा

संवत् १९६४ में श्रीमती महादेवी वर्मा ने फर्रुखाबाद में जन्म लिया। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा इन्दौर में हुई। फिर इलाहाबाद विश्व-विद्यालय में पढ़ कर उन्होंने संस्कृत में एम० ए० किया। आजकल प्रयाग के महिला विद्यापीठ की आचार्या हैं। वे मंगलाप्रसाद पुरस्कार प्राप्त कर चुकी हैं। राष्ट्रपति ने उन्हें पद्मश्री की उपाधि से भूषित किया है। आजकल उत्तर प्रदेश की विधान परिषद् की मनोनीत सदस्या हैं।

घर में रामायण की भक्त माता का तथा इन्दौर में पढ़ते समय ही तुलसी, सूर और मीरा का प्रभाव उनके जीवन पर पड़ा। वे कहती हैं कि 'बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनकी संसार को दुःखात्मक समझने वाली फिलासफी से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।' इस प्रकार वेदना को जीवन में प्रिय मान कर वे कविता में उसे ही अपना कर रह गयीं। उनका कथन है—'दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँधे रखने की क्षमता रखता है।' प्रायः उनकी सभी कविताओं में वही भाव मुख्य है। आचार्य शुक्लजी का निष्कर्ष है—"वेदना के आगे वे मिलन-सुख को भी कुछ नहीं गिनतीं। वे कहती हैं कि 'मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चूर हूँ।' इस वेदना को ले कर इन्होंने हृदय की ऐसी अनुभूतियाँ सामने रखीं जो लोकोत्तर हैं। कहाँ तक वे वास्तविक अनुभूतियाँ हैं और कहाँ तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना हैं, यह नहीं कहा जा सकता।"

महादेवीजी के गीतों में प्रत्यक्षतः परोक्ष सत्ता के प्रति विरह-जन्य आत्मानुभूति की करुण पुकार है। वह अन्तर्मुखी ही रह गयीं, लोक-अनुभूति को स्पर्श न कर सकीं। आरम्भ में यह अनुभूति कुतूहल-मिश्रित वेदना का उच्छ्वास है, जो 'नीहार' के गीतों में प्रकट हुआ। 'रश्मि' में उनके चिन्तन की किरण जिज्ञासा और उत्कण्ठा बन कर झलकी। 'नीरजा' में विरह-वेदना की तीव्रता दुःख में

सुख की प्रतीति बन कर व्यक्त हुई और 'मिलन-यामिनी' के मङ्गलाचरण 'सान्ध्यगीत' में इन दोनों के समन्वय की 'दार्शनिक एकाग्रता उच्चतर हो उठी है।' आगे चल कर ये चारों गीत-संग्रह कवयित्री की तूली के रंगीन चित्रों से सुसज्जित 'यामा' के रूप में प्रकट हो आज उसकी भावना के चार यामों का संकेत कर रहे हैं। चित्रों के रेखा-पटल पर अङ्कित अश्रु-सिक्त गीतों के संग्रह 'दीपशिखा' में कवयित्री की भावना अपने अचिन्त्य प्रियतम से मनुहार कर रही है कि 'जब यह दीप थके तब आना।' महादेवी के गीतों में रहस्यवादात्मक प्रणय की विविध अनुभूतियों की प्रतिध्वनि है। उनमें प्रिय के मिलन की नारी-सुलभ आतुरता, विकलता, प्रतीक्षा आदि की स्वाभाविक अनुभूति की मार्मिकता है, सहृदय कवि की कल्पना की कमनीयता है, दार्शनिक चिन्तन की मधुरता है और भावुकतामयी शैली की विशिष्टता है। महादेवीजी ने प्रकृति के रम्य चित्रों की संश्लिष्ट योजना भी की है। उसको अधिकतर उद्दीपन के रूप में ही ग्रहण किया है। उसमें उन्हें परम सत्ता की प्रतीति हुई है, कभी प्रिय-मिलन के लिए अपेक्षित प्रसाधन की सामग्री मिली है, कभी मनोभावों की सजीव चेतना, तो कभी भावाभिव्यक्ति की आधार-भूमि।

अपनी ही करुण रागिनी में मग्न महादेवी ने काव्य के विविध उपादानों से अलंकृत अपनी गद्य-रचनाओं में अपने चतुर्दिक् के वातावरण में व्याप्त करुणा का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। यहाँ वे लोक के दुःख की समभागिनी हो गयी हैं। 'स्मृति की रेखाएँ', 'अतीत के चलचित्र' और 'शृङ्खला की कड़ियाँ' में दरिद्र जनता जनार्दन और उपेक्षित तथा निम्न स्तर के नारिवर्ग के प्रति कवयित्री की सहज संवेदना बड़ी ही भावुक तथा अन्तःस्पर्शिनी है। 'महादेवी का विवेचनात्मक गद्य' 'आधुनिक कवि (१)' तथा 'यामा' और 'दीपशिखा' की भूमिका में गंभीर विचारक और तर्कपूर्ण आलोचक के रूप में महादेवीजी के दर्शन होते हैं। उन्होंने कुछ यात्राओं के वर्णन और उक्त 'रेखाओं' तथा 'चलचित्र' के अतिरिक्त अन्य संस्मरण भी लिखे हैं। उनमें भी उनका भावावेश

तथा कवित्व से अलंकृत गद्य और उनकी मन-मोहिनी शैली का कौशल देखने को मिलता है।

१७. रामधारीसिंह 'दिनकर'

दिनकरजी का जन्म संवत् १९६५ में मुंगेर (बिहार) के सिमरिया गाँव में हुआ। वे पटना विश्वविद्यालय के इतिहास में बी० ए० (आनर्स) हैं। उन्होंने बँगला, संस्कृत और उर्दू का भी अध्ययन किया है। कुछ दिनों तक सब-रजिस्ट्रार और मुजफ्फरपुर कालेज में हिन्दी के आचार्य पद पर काम करने के बाद राष्ट्रपति के द्वारा मनोनीत हो आज-कल राज्यसभा के सदस्य हैं। दिनकर देश के अतीत वैभव की वर्तमान दुर्गति से प्रेरित विषाद के साथ ही परतन्त्रता की श्रृङ्खला को तोड़ने के लिए विकल पुरुषार्थ ले कर काव्याकाश में उदित हुए और ऐसे चमके कि अपने स्वरों में पुरातन और अद्यतन राष्ट्रभारती के ओजस्वी गायक माने गये।

आज के युग में प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी आदि के सदृश दिनकर ने भी केवल कविता में अपने उद्‌गार नहीं प्रकट किये, निबन्धों और आलोचनाओं के माध्यम से भी अपने विचार, तर्क और सिद्धांत का निरूपण करने में प्रवृत्त हुए हैं। 'मिट्टी की ओर', 'रेती के फूल', 'अर्धनारीश्वर' और 'हमारी सांस्कृतिक एकता' में उनकी ये गद्य-रचनाएँ सङ्कलित हुई हैं। उन्होंने विविध विषयों को ले कर वर्णनात्मक और भावनात्मक कविताएँ लिखी हैं, जो मुक्तक भी हैं और प्रबंध भी। उनकी मुक्तक कविताओं के संग्रहों में 'चित्तौर का साका', 'धूप-छाँह' और 'मिर्च का मजा' में बालकोपयोगी रचनाएँ हैं, जिनमें कुछ स्वच्छन्द रूप से अनूदित भी हैं। 'रेणुका', 'हुङ्कार', 'रसवन्ती', 'द्वन्द्वगीत', 'सामधेनी', 'धूप और धुआँ, 'नील कुसुम', 'नीम के पत्ते', 'इतिहास के आँसू', 'दिल्ली', 'बारदोली विजय', 'बापू', 'कुरुक्षेत्र' और 'रश्मिरथी' उनके कवित्व के परिचायक हैं। 'बापू' में महात्मा गाँधी के प्रति कवि के आकर्षण और उनके निधन पर शोक के उद्‌गार हैं। 'कुरुक्षेत्र' और

रश्मिरथी' प्रबन्ध हैं। वे दोनों महाभारत के कथानक पर आधारित हैं। 'कुरुक्षेत्र' में युद्धजन्य संहार से उत्पन्न युधिष्ठिर के निर्वेद तथा भीष्म के द्वारा उसके शमन के व्याज से कवि ने उन समस्याओं पर विमर्श किया है जो द्वितीय विश्वयुद्ध की विभीषिका ले कर आधुनिक युग में उपस्थित हुईं। इसमें आख्यान के वर्णन, चरित्र-चित्रण, अन्तर्द्वन्द्व आदि के प्रदर्शन तथा कवित्व के कौशल का प्रयास नहीं हुआ। कवि यहाँ मुख्यतया लोकपक्ष के समर्थक आधुनिक विचारक के रूप में उपस्थित हुआ है। इसकी छन्द-योजना में उसके कृतित्व का विकास लक्षित होता है, जिसमें कवित्तों की कमनीयता के साथ विविध तुकान्त वृत्तों और मुक्त व स्वच्छन्द छन्दों का भी विधान है। 'रश्मिरथी' प्रबंध काव्य में, उन्हीं के शब्दों में, 'विचारोत्तेजकता ही नहीं कुछ कथा-संवाद और वर्णन' भी है। इसमें कर्ण के चरित्र के द्वारा उच्च कुल में जन्म के कारण प्राप्त महत्ता की अपेक्षा आचरण की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गयी है। इसकी भाषा कहीं-कहीं अव्यवस्थित हो गई है और छन्द-प्रणाली में गति-भंग लक्षित होता है।

शेष कविता-संग्रहों में दिनकर का उत्तरोत्तर विकसित कविकर्म सञ्चित है। 'रसवन्ती' में व्यक्तिगत अनुभूतियों के मृदु स्वर हैं, और 'द्वन्द्व गीत' में दार्शनिक भावनाओं की रुबाइयाँ। अन्यत्र कहीं देश के भूतकालीन वैभव की स्मृति-जन्य वेदना की करुण धारा का अपने में बहा ले जाने वाला प्रवाह है तो कहीं उसके वर्तमान के परतंत्रता-कालीन बन्धनों को तोड़ने की प्रेरणा; कहीं गाँधीजी के सत्याग्रह और असहयोग की कर्म में प्रेरक गर्जना है तो कहीं देश में होने वाले दंगों के प्रति खीझ, कहीं आधुनिक युग में कृषकों-श्रमियों आदि के शोषण की मार्मिक कराह है तो कहीं पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को ध्वस्त करने वाले विस्फोट। दिनकर जी युग के प्रगतिशील चरणचिह्नों के साथ सञ्चरण करने वाले सजग कवि हैं। इसी से आज के राष्ट्र-जागरण की विकलता, क्षुब्धता और कर्मठता उनके पौरुषमय स्वर में गूँज उठी है। उसमें तन्मय करने वाली मस्ती उमंग और उत्साह है। उनकी भाषा

शक्तिशालिनी है, जिसमें संस्कृत की परिचित पदावली के साथ उर्दू के सजीव शब्दों का जी खोलकर प्रयोग किया गया है। दिनकर की वाणी से वर्ण्य वस्तु, विषय या भाव यौवन के उद्दाम आवेश के साथ फूट निकला है। इसी से वे अत्यन्त लोकप्रिय कवि हैं।

१८. श्यामनारायण पाण्डेय

आजमगढ़ (उत्तरप्रदेश) के डुमराँव नामक गाँव में पांडेयजी का जन्म श्रावण कृष्णा पंचमी संवत् १९६७ को हुआ। उन्होंने बहुत दिनों तक काशी में अध्ययन और अध्यापन करके वहीं रहते समय हरिऔधजी से हिन्दी कविता की दीक्षा ली। उनकी फुटकर कविताएँ 'माधव', 'रिम-झिम' तथा 'आरती' में संगृहीत हुई हैं, जिनमें कुछ में करुण भाव तथा देश-भक्ति-विषयक उद्‌गार भी व्यक्त हुए हैं। 'त्रेता के दो वीर' में, जो आगे 'तुमुल' नाम से प्रकट हुआ, लक्ष्मण और मेघनाद के युद्ध का वर्णन करने के बाद कवि पौराणिक युग से हट कर राजपूताने के इतिहास के अमर रत्न स्वतन्त्रता के पुजारी प्रताप और बलिदान की देवी पद्मिनी की प्रशस्तियों में वीर-दर्प से गरज उठा। उनके मन में अपने काव्य के प्रमुख चरित्रों के प्रति कोरी श्रद्धा भक्ति और प्रीति ही नहीं, यथेष्ट उमङ्ग भी है। इसी से उनके रचे 'हल्दीघाटी' और 'जौहर' प्रबन्धों में इतना जीवट है। इन काव्यों में कवि ने कहीं कहीं लोकप्रसिद्ध घटनाओं में यत्र-तत्र हेर-फेर करके अपनी सृजनात्मक प्रवृत्ति भी सूचित की है। जैसे दुर्बलता के क्षण में राणा प्रताप ने जब अकबर से संधि का प्रस्ताव कर दिया तब पृथ्वीराज ने पत्र लिख कर उन्हें सजग किया था। ऐसा न कर 'हल्दीघाटी' के कवि ने राणा को उनकी सहचरी के द्वारा संधि के विचार से विरत करवाया है। प्रताप की सहधर्मिणी का चरित इस परिवर्तन से कितना ऊँचा उठ गया है! उपर्युक्त दोनों काव्यों में वीर रस का यथेष्ट परिपाक हुआ है। स्वाधीनता और स्वधर्म को बचाने के लिए जिस दृढ़ता और लगन के साथ त्याग की अपेक्षा होती है उसका यथातथ्य चित्रण करने में कवि सफल हुआ है। घटनाओं का चक्र जिस

वेग से चलता है, और व्यापार जिस क्षिप्रता से होते हैं कविकृत उनके वर्णन भी उसी वायु-वेग से बढ़ते हैं। युद्ध का वर्णन करने में तो कवि ने कमाल ही कर दिया है। उसने राणा प्रताप और गोरा बादल के रण-कौशल, शस्त्र-प्रयोग और अश्व-सञ्चालन का प्रत्यक्ष चलचित्र ही खींच दिया है, जो आँखों के सामने तुरन्त नाच उठता है। उर्दू में मर्सिया के प्रसिद्ध कवि अनीस के वर्णित युद्ध के सजीव दृश्य-विधान के समान ही पांडेयजी ने हिन्दी-कविता में मध्य युग के संग्राम का वर्णन बड़े ही फड़कते छन्दों में किया है। ऐसा सजीव युद्ध-वर्णन भारती (खड़ी बोली) के किसी अन्य कवि ने अब तक नहीं किया। कवि ने इन काव्यों में प्रकृति का वर्णन सर्गारम्भ में युद्ध की भीषणता या वीरोल्लास की तीव्रता को उद्दीप्त करने के लिए किया है।

पांडेयजी ने विषयानुरूप छोटे छोटे मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया है। उनकी भाषा में कहीं कहीं पूरबी प्रयोग और मुहावरों के दोष भी देखे जाते हैं, किन्तु अधिकतर वह प्राञ्जल है। उन्होंने चलते उर्दू शब्दों को निस्संकोच अपनाया है। उनकी शब्दावलि सहज सुबोध है। उसमें क्लिष्टता नहीं। देश के नवजागरण के युग में पांडेयजी के वीर-काव्य नवयुवकों के कण्ठहार बने। वे जैसे अपनी वाणी के प्रवाह में कवि-सम्मेलनों के श्रोताओं को रस-मग्न कर प्रवाहित करने में कृतकार्य हुए वैसे ही अपने पाठकों के विस्तृत क्षेत्र को भी रस-प्लावित करने में समर्थ हैं। सरल और चलती भाषा में वीर रस की रचना करने वाला सरस और ओजस्वी कवि श्यामनारायण पांडेय के सदृश आज दूसरा नहीं है।

साखी

सतगुर की महिमा अनँत, अनँत किया उपगार।
लोचन अनँत उघाड़िया, अनँत दिखावणहार। १।

जाका गुर भी अंधला, चेला खरा निरंध।
अंधै अंधा ठेलिया, दून्यू कूप पड़ंत। २।

ना गुर मिल्या न सिख भया, लालच खेल्या डाव।
दून्यूँ बूड़े धार मैं, चढ़ि पाथर की नाव। ३।

गुर गोविंद तौ एक हैं, दूजा यहु आकार।
आपा मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार। ४।

मेरा मन सुमिरै राम कू, मेरा मन रामहिं आहि।
अब मन रामहिं ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि। ५।

'कबीर' निरभै राम जपि, जब लगि दींवै बाति।
तेल घटा बाती बुझी, (तब) सोवैगा दिन राति। ६।

चकवी बिछुटी रैणि की, आइ मिली परभाति।
जे जन बिछुटे राम सूँ, ते दिन मिले न राति। ७।

जौ रोऊँ तौ बल घटै, हँसौं तो राम रिसाइ।
मन ही माहिं बिसूरणाँ, ज्यूँ घुँण काठहि खाइ। ८।

हाँसी खेलौं हरि मिलै, तौ कौण सहै षरसान।
काम क्रोध तृष्णां तजै, ताहि मिलैं भगवान। ६।

'कबीर' हरि रस यों पिया, बाकी रही न थाकि।
पाका कलस कुँभार का, वहुरि न चढ़ई चाकि। १०।

भारी कहौं तो वहु डरौं, हलका कहूँ तो भूठ।
मैं का जाणौं राम कूँ, नैनूँ कवहुँ न दीठ। ११।

'कवीर' रेख स्यँदूर की, काजल दिया न जाइ।
नैनूँ रमइया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ। १२।

नैनाँ अंतरि आव तूँ, ज्यूँ हौं नैन झँपेउँ।
ना हौं देखौं और कूँ, ना तुझ देखन देउँ। १३।

उस संम्रथ का दास हौं, कदे न होइ अकाज।
पतिव्रता नाँगी रहै, तौ उस ही पुरिस कौं लाज। १४।

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूँढै बन माहिं।
ऐसे घटि घटि राम है, दुनिया देखै नाहिं। १५।

यहु ऐसा संसार है, जैसा सैंवल फूल।
दिन दस के व्यौहार कौं, झूठै रंगि न भूलि। १६।

मालन आवत देखि करि, कलियाँ करीं पुकार।
फूले फूले चुणि लिये, काल्हि हमारी वारि। १७।

'कवीर' नौबति आपणी, दिन दस लेहु वजाइ।
ये पुर पट्टन ये गली, वहुरि न देखै आइ। १८।

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ।
एकै आखर पीव का, पढ़े सु पंडित होइ।१६।

'कबीर' पढिवा दूरि करि, पुसतक देइ वहाइ।
बावन आखर सोधि करि, ररै ममैं चित लाइ।२०।

'कबीर' माला मन की, और सँसारी भेष।
माला पहर्‌याँ हरि मिलै, तौ अरहठ कै गलि देष।२१।

सूरिप संग न कीजिये, लोहा जलि न तिराइ।
कदली सीप भवंग मुषी, एक बूँद तिहुँ भाइ।२२।

'कबीर' संगति साध की, बेग करीजै जाइ।
दुरमति दूरि गँवाइसी, देसी सुमति वताइ।२३।

चन्दन की चुटकी भली, नां वबूर की अवराँउँ।
वैश्नों की छपरी भली, नां साषत का वड़ गाँउँ।२४।

'कबीर' सोई दिन भला, जा दिन संत मिलाहिं।
अंक भरे भरि भेंटिया, पाप सरीरौं जाहिं।१५।

ऊँचे कुल क्या जनमियाँ, जो करनीं ऊँच न होइ।
सोवन कलस सुरै भला, साधू निंदै सोइ।२६।

निंदक नेड़े राखिये, आँगणि कुटी वँधाइ।
विन सावण पांणी विना, निरमल करै सुभाइ।२७।

शब्द

दुलहनी गावहु मंगलचार,

हम घर आये हो राजा राम भरतार।

तन रति करि मैं मन रति करिहूँ पंच तत्त बराती।
रामदेव मोरे पांहुनै आये, मैं जोबन मदमाती।
सरीर सरोवर वेदी करिहूँ, ब्रह्मा वेद उचार।
रामदेव सँग भाँवरि लैहूँ, धनि धनि भाग हमार।
सुर तैंतीसूँ कौतुक आये, मुनिवर सहस अठ्यासी।
कहै 'कबीर' हमैं व्याहि चले हैं, पुरिष एक अविनासी।१।

हरि जननी मैं बालिक तेरा,

काहे न औगुण बकसहु मेरा।

सुत अपराध करै दिन केते, जननी कै चित रहैं न तेते।
कर गहि केस करै जो घाता, तऊ न हेत उतारै माता।
कहै 'कबीर' एक बुद्धि बिचारी, बालक दुखी दुखी महतारी।२।

हम न मरैं मरिहैं संसारा, हमकूँ मिल्या जियावनहारा।
अब न मरौं मरनैं मन माँनाँ, तेइ मुएँ जिन राम न जाना।
साकत मरै सन्त जन जीवै, भरि भरि राम रसाइन पीवै।
हरि मरिहैं तौ हमहूँ मरिहैं, हरि न मरैं हम काहेकुँ मरिहैं।
कहै 'कबीर' मन मनहिं मिलावा, अमर भये सुख सागर पावा।३।

पंडित बाद वदंते झूठा।
राम कह्याँ दुनियाँ गति पावे, षांढ कह्याँ मुख मीठा।
पावक कह्याँ पाव जे दाझै, जल कहि त्रिषा बुझाई।
भोजन कह्याँ भूष जे भाजै, तौ सब कोई तिरि जाई।
नर कै साथि सूवा हरि बोलै, हरि परताप न जानै।
जो कबहूँ उड़ि जाइ जँगल मैं, बहुरि न सुरतैं आनै।
साँची प्रीति विषै माया सूँ, हरि भगतनि सूँ हाँसी।
कहै 'कबीर' प्रेम नहिं उपज्यो, बाँध्यो जमपुरि जाँसी।४।

डगमग छाँड़ि दे मन बौरा।
अब तौ जरें बरें बनि आवै, लीन्हों हाथ सिंधौरा।
होइ निसंक मगन ह्वै नाचौ, लोभ मोह भ्रम छाड़ौ।
सूरौ कहा मरन थैं डरपै, सती न संचै भाँड़ौ।
लोक वेद कुल की मरजादा, इहै गलै मैं फाँसी।
आधा चलि करि पाछा फिरिहैं, ह्वैहैं जग मैं हाँसी।
यहु संसार सकल है मैला, राम कहैं ते सूचा।
कहै 'कबीर' नाव नहिं छाड़ौं, गिरत परत चढ़ि ऊँचा।५।

काहे री नलनी तूँ कुमिलानी, तेरे ही नाल सरोवर पानी।
जल मैं उतपति जल मैं वास, जल मैं नलनी तोर निवास।
ना तलि तपति न ऊपरि आगि, तोर हेतु कहु कासनि लागि।
कहै 'कबीर' जो उदिक समान, ते नहिं मूए हमारे जानि।६।

अभ्यास और विमर्श

१. निम्नलिखित साखियों और शब्दों की व्याख्या लिखिये और तात्पर्य स्पष्ट कीजिये :—

साखी—१०, १२, १५, १७ और शब्द—१, ६ ।

२. पाँचवीं 'साखी' में 'कबीर' क्यों किसी को सिर नवाना अस्वीकार करते हैं ? स्पष्ट कीजिये ।

३. तीसरे शब्द में 'हम न मरैं' का क्या अभिप्राय है ? 'साकत मरैं'—क्यों कहा है ?

४. पाँचवें 'शब्द' में 'लीन्हों हाथ सिंधौरा' का आशय स्पष्ट कीजिये । 'लोक वेद कुल की मरजादा, को 'गले मैं फाँसी' क्यों कहा गया है ?

५. चौथे 'शब्द' में कबीर ने जो सिद्धान्त व्यक्त किया है उसे समझाइये ।

६. सातवीं 'साखी' में उल्लिखित 'कवि समय' बतलाइये ।

७. अलङ्कार बताइये—साखी २, १६, १७, २६ और शब्द १, ६ ।

८. यथोचित उद्धरणों की सहायता से कबीर के आदर्शों और सिद्धान्तों का निरूपण कीजिये ।

९. "कबीर की उक्तियों में उनके जीवन की निष्कपटता, स्पष्टवादिता और अनुभूति का समावेश मिलता है ।" उपर्युक्त प्रमाण के द्वारा सिद्ध कीजिये ।

———

मलिक मुहम्मद जायसी

मानसरोदक

[प्रसङ्ग—सिंहलद्वीप के राजा गन्धर्वसेन और रानी चम्पावती की पुत्री थी पद्मावती। वह रूप और गुण में अनुपम थी। कवि ने उसकी और चित्तौर के राजा रत्नसेन की कथा 'पदमावत' काव्य में लिखी है। कथा के बहाने उसने अपने सूफी धर्म के सिद्धान्तों का समावेश भी इस काव्य में किया है। उसने पद्मावती को साधक की उपासना का प्रतीक भी ग्रहण किया है। नीचे दिये गये उद्धरण में पद्मावती और उसकी सहेलियों के द्वारा सिंहल के मानसरोदक नामक सरोवर में जल-विहार के साथ ही सूफी-भावना और सिद्धान्त का संकेत किया गया है।]

एक दिवस पून्यो तिथि आई, मानसरोदक चली अन्हाई।
पदमावति सब सखी बुलाईं, जनु फुलवारि सबै चलि आईं।
कोइ चंपा कोइ कुंद सहेली, कोइ सुकेत करना रसवेली।
कोइ सु गुलाल सुदरसन राती, कोइ सो बकावरि बकचुन भाँती।
कोइ सु मौलसरि पुहुपावती, कोइ जाही जूही सेवती।
कोइ सोनजरद कोइ केसर, कोइ सिंगारहार नागेसर।
कोइ कूजा सदवरग चँबेली, कोई कदम सुरस रसवेली।
चलीं सबै मालति सँग, फूले कँवल कुमोद।
बेधि रहे गन गंधरब, बास परीमल मोद।

खेलत मानसरोवर गईं, जाइ पाल पर ठाढ़ी भईं।
देखि सरोवर रहसहिं केली, पदमावति सौं कहहिं सहेली।

ए रानी मन देखु बिचारी, एहि नैहर रहना दिन चारी।
जौ लगि अहै पिता कर राजू, खेलि लेहु जो खेलहु आजू।
पुनि सासुर हम गवनब काली, कित हम, कित यह सरवर पाली।
कित आवन पुनि अपने हाथाँ, कित मिलि कै खेलब एक साथाँ।
सासु नँनद बोलिन्ह जिउ लेहीं, दारुन ससुर न निसरै देहीं।
पिउ पिआर सिर ऊपर, सो पुनि करै दहुँ काह।
दहुँ सुख राखै की दुख, दहुँ कस जनम निवाह।

मिलहिं रहसि सब चढ़हिं हिंडोरी, झूलि लेहिं सुख बारी भोरी।
झूलि लेहु नैहर जब ताईं, फिरि नहिं झूलन देइहिं साईं।
पुनि सासुर लेइ राखिहि तहाँ, नैहर चाह न पाउब जहाँ।
कित यह धूप कहाँ यह छाहाँ, रहब सखी बिनु मन्दिर माँहाँ।
गुन पूछिहि औ लाइहि दोखू, कौन उतर पाउब तहँ मोखू।
सासु ननद के भौंह सिकोरे, रहब सँकोचि दुवौ कर जोरे।
कित यह रहसि जो आउब करना, ससुरेइ अंत जनम दुख भरना।
कित नैहर पुनि आउब, कित ससुरे यह खेल।
आपु आपु कहँ होइहि, परब पंखि जस डेल।

सरवर तीर पदुमिनी आई, खोंपा छोरि केस मुकलाई।
ससि-मुख अंग मलयगिरि बासा, नागिनि झाँपि लीन्ह चहुँ पासा।
ओनये मेघ परी जग छाहाँ, ससि कै सरन लीन्ह जनु राहाँ।
छपि गै दिनहिं भानु कै दसा, लेइ निसि नखत चाँद परगसा।
भूलि चकोर दीठि मुख लावा, मेघ घटा महँ चन्द देखावा।
दसन दामिनी कोकिल भाखी, भौंहैं धनुख गगन लेइ राखी।

सरवर रूप विमोहा, हियें हिलोरहि लेइ।
पावँ छुवै मकु पावौं, येहि मिस लहरैं देइ।

धरीं तीर सब कंचुकि सारी, सरवर महँ पैठीं सब बारी।
पाइ नीर जानौं सब बेली, हुलसहिं करहिं काम कै केली।
करिल केस बिसहर बिस-भरे, लहरैं लेहिं कँवल मुख धरे।
नवल बसन्त सँवारी करीं, होइ परगट चहहिं रसभरीं।
उठी कोंप जस दारिवँ दाखा, भई ओनंत पेम कै साखा।
सरिवर नहिं समाइ संसारा, चाँद नहाइ पैठ लेइ तारा।
धनि सो नीर ससि तरईं ऊईं, अब कित दीठ कँवल औ कूईं।
चकई बिछुरि पुकारै, कहाँ मिलौ हो नाहँ।
एक चाँद निसि सरग महँ, दिन दूसर जल माहँ।

लागीं केलि करै मँझ नीरा, हंस लजाइ बैठ ओहि तीरा।
पदमावति कौतुक कहँ राखी, तुम्ह ससि होहु तराइन साखी।
बाद मेलि कै खेल पसारा, हारु देइ जौं खेलत हारा।
सँवरिहि साँवरि गोरिहि गोरी, आपनि आपनि लीन्हि सो जोरी।
बूझि खेल खेलहु एक साथा, हारु न होइ परायें हाथा।
आजुहि खेल बहुरि कित होई, खेल गयें कित खेलै कोई!
धनि सो खेल खेल सो पेमा, रउताई और कूसल खेमा?
मुहमद बाजी पेम कै, ज्यों भावैं त्यों खेल।
तिल फूलहि के संग ज्यों, होइ फुलायल तेल।

सखी एक तेइँ खेल न जाना, भै अचेत मनि हार गँवाना।
कवँल डार गहि भै बेकरारा, कासौं पुकारौं आपन हारा।

कित खेलै आइउँ एहि साथा, हार गँवाइ चलिइँ लेइ हाथा।
घर पैठत पूँछब यहि हारू, कौनु उतर पाउब पैसारू।
नैन सीप आँसुन्ह तस भरे, जानौ मोति गिरहिं सब ढरे।
सखिन कहा बौरी कोकिला, कौन पानि जेहि पौन न मिला ?
हारु गँवाइ सो ऐसै रोवा, हेरि हेराइ लेहु जौं खोवा।
लागीं सब मिलि हेरै, बूड़ि बूड़ि एक साथ।
कोइ उठी मोती लेइ, काहू घोंघा हाथ।

कहा मानसर चाह सो पाई, पारस-रूप इहाँ लगि आई।
भा निरमल तिन्ह पायन्ह परसें, पावा रूप रूप के दरसें।
मलय-समीर बास तन आई, भा सीतल, गै तपनि बुझाई।
न जनौं कौनु पौन लेइ आवा, पुन्य दसा भै पाप गँवावा।
ततखन हार बेगि उतिराना, पावा सखिन्ह चन्द विहँसाना।
बिगसे कुमुद देखि ससिरेखा, भै तहँ ओप जहाँ जोइ देखा।
पावा रूप रूप जस चहा, ससि-मुख जनु दरपन होइ रहा।
नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हंस भा, दसन-जोति नग हीर।

('जायसी ग्रंथावली' में 'पदमावत' से)

अभ्यास और विमर्श

१. शब्दार्थ बतलाइये—पाल, रहसहिं, बोलिन्ह, दहुँ, ताईं, चाह, मोखू, खोंपा, ओनंत, बाद, फुलायल।

२. तात्पर्य बतलाइये—रउताई औ कूसल खेमा। (मिला०—'होइ कि खेम कुसल रउताई।'—तुलसी)

३. व्याख्या कीजिये—चलीं सबै......परीमल मोद। ससि-मुख......राहाँ। सरिवर...लेइ तारा। बिगसे कुमुद......नग हीर।

४. निम्न उक्तियों में जो सूफी रहस्य साधना व्यंग्य है उसे स्पष्ट कीजिये—

झूलि लेहु......जनम दुख भरना। आजुहिं खेल......खेलै कोई। सरवर-रूप......लहरैं देइ। नयन जो देखा......नग हीर।

५. अलंकार बतलाइये—ससि-मुख......जनु राहाँ। मुहमद बाजी......तेल। नैन सीप......सब ढरे। मलय......बुझाई। नयन.........नग हीर।

६. इस उद्धरण में जायसी ने जिस सूफी सिद्धांत की अभिव्यक्ति की है उसे बतलाइये।

७. इस अवतरण के आधार पर जायसी के वर्णन-सौष्ठव का उद्घाटन कीजिये।

८. जायसी के महाकाव्य 'पदमावत' की पद्मावती का परिचय दीजिये।

शैशव

जसोदा हरि पालने झुलावैं।
हलरावैं दुलराइ मल्हावैं, जोइ-सोइ कछु गावैं।
मेरे लाल को आव री निंदरिया, काहे न आन सुवावैं।
तू काहैं नहिं वेगिहि आवै, तोकौं कान्ह बुलावैं।
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावैं।
सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि, करि-करि सैन बतावैं।
इहिं अन्तर अकुलाय उठे हरि, जसुमति मधुरै गावैं।
जो सुख 'सूर' अमर-मुनि दुर्लभ, सो नँद भामिनि पावैं।१।

सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरिन चलत रेनु-तन-मण्डित, मुख दधि लेप किये।
चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन-तिलक दिये।
लट लटकनि मनु मत्त मधुप गन, मादक मधुहिं पिये।
कठुला कंठ बज्र केहरि-नख, राजत रुचिर हिये।
धन्य 'सूर' एकौ पल इहिं सुख, का सत कल्प जिये।२।

सिखवति चलन जसोदा मैया,
अरबराइ करि पानि गहावति, डगमगाइ धरनी धरै पैया।
कबहुँक सुन्दर बदन विलोकति, उर आनँद भरि लेत बलैया।
कबहुँक कुल देवता मनावति, चिरजीवहु मेरौ कुँवर कन्हैया।
कबहुँक बल कौं टेरि बुलावति, इहि आँगन खेलहु दोउ भैया।
'सूरदास'-स्वामी की लीला, अति प्रताप विलसत नँदरैया।३।

प्रात समय दधि मथति जसोदा, अति सुख कमल-नयन-गुन-गावति।
अतिहिं मधुर गति, कंठ सुघर अति, नंद-सुवन चित हितहिं करावति।
नील वसन तनु सजल जलद मनु, दामिनि विवि भुजदण्ड चलावति।
चंद्र वदन लट लटकि छबीली, मनहुँ अमृत रस व्यालि चुरावति।
गोरस मथत नाद इक उपजत, किंकिनि-धुनि सुनि स्रवन रमावति।
'सूर' स्याम अँचरा धरि ठाढ़े, काम कसौटी कसि दिखरावति।४।

तनक दै री माइ माखन, तनक दै री माइ।
तनक कर पर तनक रोटी, माँगत चरन चलाइ।
कनक भू पर रतन रेखा, नेति पकरयौ धाइ।
कँप्यौ गिरि अरु सेष संक्यौ, उदधि चल्यौ अकुलाइ।
तनक मुख की तनक बतियाँ, बोलत हैं तुतराइ।
जसोमति के प्रान-जीवन, उर लियो लपटाइ।
मेरे मन कौ तनक मोहन, लागु मोहिं बलाइ।
स्यामसुन्दर नंद कुँवर पर, 'सूर' बलि-बलि जाइ।५।

कजरी को पय पियहु लाल, जासौं तेरी बेनि बढ़ै।
जैसें देखि और ब्रज-बालक, त्यों बल बैस चढ़ै।
यह सुनि कै हरि पीवन लागे, ज्यौं त्यौं लयो लढ़ैं।
अँचवत पै तातो जब लाग्यो, रोवत जीभि डढ़ैं।
पुनि पीवत ही कच टकटोरत, झूठहिं जननि रढ़ैं।
'सूर' निरखि मुख हँसति जसोदा, सो सुख उर न कढ़ैं।६।

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी ?
किती बार मोहि दूध पिवति भइ, यह अजहूँ है छोटी !

तू जो कहति वलि की बेनी ज्यों ह्वैहै लाँबी मोटी।
काढ़त गुहत न्हवावत जैहै, नागिन सी भुइँ लोटी।
काचो दूध पियावति पचि-पचि, देति न माखन रोटी।
'सूरज' चिरजीवो दोउ भैया, हरि-हलधर की जोटी।७।

खेलन अब मेरी जाय वलैया।
जवहि मोहिं देखत लरिकन सँग तवहिं खिझत वल भैया।
मोसों कहत तात वसुदेव कौ देवकि तेरी मैया।
मोल लियौ कछु दै करि तिनको, करि करि जतन बढ़ैया।
अब वावा कहि कहत नन्द सौं, जसुमति सौं कहैं मैया।
ऐसैं कहि सव मोहिं खिझावत, तब उठि चल्यौ खिसैया।
पाछे नन्द सुनत हे ठाढ़े, हँसत हँसत उर लैया।
'सूर' नन्द वलरामहिं धिरच्यौ, तव मन हरष कन्हैया।८।

खेलत मैं को काकौ गुसैयाँ।
हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रिसैयाँ।
जाति पाँति हमते बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयाँ।
अति अधिकार जनावत यातैं, जातैं अधिक तुम्हारैं गैयाँ।
रुहठि करै तासों को खेलै, रहे वैठि जहँ तहँ सब ग्वैयाँ।
'सूरदास' प्रभु खेल्यौइ चाहत, दाउँ दियौ करि नन्द दुहैयाँ।९।

माखन लीला

गये स्याम ग्वालिनि घर सूने।
माखन खाइ डारि सब गोरस, बासन फोरि किये सब चूने।

चड़ौ माट एक वहुत दिननि कौ, ताहि कर्‌यौ दस टूक।
सोवत लरिकनि छिरकि मही सौं हँसत चले दै कूक।
आइ गई ग्वालिनि तिहिं औसर, निकसत हरि धरि पाये।
देखत घर वासन सव फूटे, दूध दही ढरकाये।
दोउ भुज धरि गाढ़ैं करि लीन्हें गई महरि के आगैं।
'सूरदास' अब वसे कौन ह्याँ, पति रहिहैं व्रज त्यागैं।१०।

मैया, मैं नहिं माखन खायौ।
ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि, मेरे मुख लपटायौ।
देखि तुम्हीं सींके पर भाजन, ऊँचे धरि लटकायौ।
हौं जु कहत नान्हें कर अपने मैं कैसे करि पायौ।
मुख दधि पोंछि बुद्धि इक कीन्हीं दोना पीठ दुरायौ।
डारि साँटि मुसकाइ जसोदा, स्यामहिं कंठ लगायौ।
बाल विनोद मोद मन मोह्यो, भक्ति प्रताप दिखायौ।
'सूरदास' जसुमति कौ यह सुख, सिव विरंचि नहिं पायौ।११।

वंशी

बंसी बन कान्ह बजावत।
आइ सुनो स्रवननि मधुरे सुर, राग रागनी ल्यावत।
सुर, श्रुति, ताल, बँधान अमित अति, सप्त अतीत अनागत आवत।
जनु जुग कर बर वेष साधि मथि, वदन पयोधि अमृत उपजावत।
मनो मोहिनी भेष धरे हरि मुरली-मोहन मुख मधु प्यावत।
सुर नर मुनि बस किये राग रस अधर सुधारस प्रेम जगावत।

महा मनोहर नाद 'सूर' थिर चर मोहे मिलि मरम न पावत।
मानहु मूक मिठाई के गुन कहि न सकत मुख सीस डुलावत।१२।

मुरली तऊ गोपालहिं भावति।
सुन री सखी जदपि नँदनंदहि नाना भाँति नचावति।
राखति एक पायँ ठाढ़ो करि अति अधिकार जनावति।
कोमल अंग आपु आज्ञा गुरु कटि टेढ़ी ह्वै जावति।
अति आधीन सुजान कनौड़े गिरधर नारि नवावति।
आपुन पौढ़ि अधर सेज्या पर, कर पल्लव सन पद पलुटावति।
भृकुटी कुटिल फरक नासा पुट, हम पर कोपि कुपावति।
'सूर' प्रसन्न जानि एकौ छिन अधर सुसीस डोलावति।१३।

उद्धव-सन्देश

कोउ व्रज बाँचत नाहिंन पाती।
कत लिखि लिखि पठवत नँद-नंदन कठिन विरह की काती।
नयन सजल कागद अति कोमल, कर अँगुरी अति ताती।
परसत जरै विलोकत भीजति, दुहूँ भाँति दुख छाती।
क्यों समुझै ये अंक 'सूर' सुनु, कठिन विरह सर घाती।
देखे जियहिं स्याम सुन्दर के, रहहिं चरन दिन राती।१४।

उर में माखनचोर गड़े।
अब कैसेहु निकसत नहिं ऊधो, तिरछे ह्वै जु अड़े।
जदपि अहीर जसोदा-नन्दन, तदपि न जात छँड़े।
उहाँ बने जदुवंस महा कुल, हमहि न लगत बड़े।

को वसुदेव देवकी है को, ना जानै औ बूझै।
'सूर' स्यामसुन्दर विनु देखे, और न कोऊ सूझै।१५।

ऊधो, मन माने की बात।
दाख छोहारा छाँड़ि अमृतफल, विषकीरा विष खात।
जो चकोर को देइ कपूर कोइ, तजि अंगार अघात?
मधुप करत घर कोरे काठ में, बँधत कमल के पात।
ज्यों पतंग हित जानि आपनो, दीपक सों लपटात।
'सूरदास' जाको मन जासों, सोई ताहिं सुहात।१६।

ऊधो, मन नाहीं दस बीस।
एक हुतो सो गयो स्याम सँग, को आराधै ईस?
भईं अति सिथिल सबै माधो विनु, जथा देह विनु सीस।
स्वासा अटकि रहीं आसा लगि, जीवहिं कोटि बरीस।
तुम तौ सखा स्याम सुन्दर के, सकल जोग के ईस।
'सूरजदास' रसिक की बतियाँ, पुरवौ मन जगदीस।१७।

ऊधौ, मन नहिं हाथ हमारे।
रथ चढ़ाय हरि संग गये लै मथुरा जबै सिधारे।
नातरु कहा जोग हम छाँड़हिं अति रुच कर तुम ल्याये।
हम तौ झँखति स्याम की करनी, मन लै जोग पठाये।
अजहूँ मन अपनौ हम पावैं, तुमते होय तो होय।
'सूर' सपथ हमैं कोरि तिहारी कहौ करैंगी सोय।१८।

ऊधो, जाय बहुरि सुनि आवहु, कहा कह्यो है नन्दकुमार।
यह न होय उपदेस स्याम को कहत लगावन छार।

निर्गुन ज्योति कहा उन पाई सिखवत बारंबार।
काल्हिहि करत हुते हमरे अँग अपने हाथ शृँगार।
व्याकुल भये गोपालहिं बिछुरे गयो गुन ग्यान सँभार।
ताते ज्यौं भावे त्यौं बकत हौ नाहीं दोष तुम्हार।
विरह सहन को हम सिरजीं हैं पाहन हृदय हमार।
'सूरदास' अंतरगत मोहन, जीवन-प्रान अधार।१९।

गोकुल सबै गोपाल उपासी।
जोग अंग साधत जे ऊधौ ते सब बसत ईसपुर कासी।
जद्यपि हरिहम तजि अनाथ करि तदपि रहतिं चरननि रस रासी।
अपनी सीतलताहिं न छाँड़त जद्यपि है ससि राहु गरासी।
का अपराध जोग लिखि पठवत प्रेम भजन तजि करत उदासी।
'सूरदास' ऐसी को बिरहिनि माँगति मुक्ति तजे धन-रासी।२०।

अँखियाँ हरि दरसन की भूँखी।
कैसे रहैं रूप-रस-राँची ये बतियाँ सुनि रूखी।
अवधि गनत इकटक मग जोवत तव एती नहि भूँखी।
अब इन जोग सँदेसन ऊधो, अति अकुलानी दूखी।
बारक वह मुख फेरि दिखावौ, दुहि पय पिवत पतूखी।
'सूर' सिकत हठि नाव चलावो ये सरिता हैं सूखी।२१।

नाहिंन रह्यो हिय में ठौर।
नंद-नंदन अछत कैसे आनिये उर और!
चलत चितवत, दिवस जागत सपन सोवत राति,
हृदय ते वह स्याम मूरति छन न इत उत जाति।

कहत कथा अनेक ऊधो लोक लाभ दिखाय।
कहा करौं तन प्रेम पूरन घट न सिन्धु समाय!
स्याम-गात सरोज-आनन ललित अति मृदु-हास।
'सूर' ऐसे रूप-कारन, मरत लोचन प्यास।२२।

रहि रे मधुकर मधु मतवारे।
कहा करौं निर्गुन लैके हौं, जीवहिं कान्ह हमारे।
लोटत नीच पराग पंक में, पचत न आपु सँभारे।
वारंवार सरक मदिरा की अपरस कहा उघारे।
तुम जानत हमहूँ वैसी हैं, जैसे कुसुम तिहारे।
घरी पहर सब को बिलमावत जेते आवत कारे।
सुंदर स्याम कमल-दल-लोचन जसुमति नन्द दुलारे।
'सूर' स्याम को सरवसु अरप्यो, अब कापै हम लेहिं उधारे।२३।

निर्गुन कौन देस को बासी ?
मधुकर हँसि समुझाय सौंह दै, बूझति साँच न हाँसी।
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि को दासी।
कैसो बरन भेप है कैसो केहि रस को अभिलाषी।
पावैगो पुनि कियो आपनो, जो रे कहैगो गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यो ठगो सो, 'सूर' सबै मति नासी।२४।

बिनु गोपाल बैरिन भईं कुंजैं,
तब ये लता लगतिं अति सीतल, अब भईं विरह ज्वाल की पुंजैं।
बृथा बहति जसुना, खग बोलत, बृथा कमल फूलहिं अलि गुंजैं।
पवन, पानि, घनसार, सजीवन, दधिसुत किरन भानु भईं सुंजैं।

ये ऊधो कहियो माधौ सों, विरह करद कर मारत लुंजैं।
'सूरदास' प्रभु को मग जोवत अँखियाँ भई बरन ज्यों गुंजैं ।२५॥

अभ्यास और विमर्श

१. अर्थ बताइये—गोरोचन, कठुला, कल्प, अरबराइ, बदन, नेति, अँचवत, सुनत हे, रुहठि, मही, ख्याल परैं, श्रुति, ताल, सप्त अतीत अनागत आवत, नारि, करद ।

२. पहले पद में 'करि करि सैन बतावे'—क्यों ?

पाँचवें पद में 'कँप्यो गिरि···अकुलाइ' का क्या तात्पर्य है ? इससे कवि क्या संकेत करता है ?

नवें पद में 'अति अधिकार···गैयाँ' में क्या व्यंग्य है ?

दसवें पद में 'अब बसै···त्यागैं' से ग्वालिन क्या व्यक्त करना चाहती है ?

बीसवें पद में 'अपनी सीतलताहिं···राहु गरासी' से गोपी अपने विषय में क्या संकेत कर रही है ?

३. व्याख्या कीजिये—पद ८, ११, १५, १७, १६, २०, २३ और २५ ।

४. तेईसवें पद में सम्बोधित मधुकर से क्या अभिप्राय है ? ऐसा क्यों किया गया है ?

५. अलंकार समझाइये—लट लटकनि—पिये (२), महा-मनोहर डुलावत (१२) ।

६. "सूरदास बालकों के स्वभाव, कार्य और मानसिक भावों के चित्रण में अद्वितीय हैं।" उपयुक्त उद्धरण देते हुए स्पष्ट कीजिये ।

७. उचित अवतरण देते हुए गोपियों के प्रेम की मार्मिकता का वर्णन कीजिये ।

८. सूरदास के वर्णन-कौशल तथा शब्द-चित्रण की प्रवीणता का प्रदर्शन कीजिये ।

वन्दना

वंदौं गुरु पद पदुम परागा, सुरुचि सुवास सरस अनुरागा।
अमिअ मूरिमय चूरन चारू, समन सकल भव रुज परिवारू।
सुकृत संभु तन विमल विभूती, मंजुल मंगल मोद प्रसूती।
जन मन मंजु मुकुरु मलहरनी, किये तिलकु गुन गन बसकरनी।
श्रीगुरु पद नख मनि गन जोती, सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।
दलन मोह तम सो सुप्रकासू, बड़े भाग उर आवै जासू।
उघरहिं विमल विलोचन ही के, मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।
सूझहिं रामचरित मनि मानिक, गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक।

जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं सैल बन भूतल भूरि निधान।१।

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन, नयन अमिय दृग दोष विभंजन।
तेहि करि बिमल विवेक विलोचन, बरनौं रामचरित भव मोचन।
वंदौं प्रथम महीसुर चरना, मोह जनित संसय सब हरना।
सुजन समाज सकल गुन खानी, करौं प्रनाम सप्रेम सुबानी।
साधु चरित सुभ सरिस कपासू, निरस बिसद गुनमय फल जासू।
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा, वंदनीय जेहि जग जसु पावा।
मुद मंगलमय सन्त समाजू, जो जग जंगम तीरथराजू।
राम भगति जहँ सुरसरि धारा, सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा।
विधि निषेध मय कलि मल हरनी, करम कथा रविनंदिनि बरनी।

हरि हर कथा विराजति बेनी, सुनत सुलभ मुद मंगल देनी।
बटु विस्वासु अचल निज धरमा, तीरथराज समाज सुकरमा।
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा, सेवत सादर समन कलेसा।
अकथ अलौकिक तीरथराऊ, देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ।

सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग।२।

मज्जन फल पेखिअ ततकाला, काक होहि पिक बकौ मराला।
सुनि अचरज करई जनि कोई, सतसंगति महिमा नहिं गोई।
वालमीकि नारद घटजोनी, निज निज मुखनि कही निज होनी।
जलचर थलचर नभचर नाना, जे जड़ चेतन जीव जहाना।
मति कीरति गति भूति भलाई, जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई।
सो जानब सतसंग प्रभाऊ, लोकहुँ बेद न आन उपाऊ।
बिन सतसंग विवेक न होई, राम कृपा बिनु सुलभ न सोई।
सतसंगति मुद मंगल मूला, सोइ फल सिधि सब साधन फूला।
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई, पारस परस कुधातु सुहाई।
विधि बस सुजन कुसंगति परहीं, फनि मनि सम निज गुन अनुसरहीं।
विधि हरि हर कवि कोविद बानी, कहत साधु महिमा सँकुचानी।
सो मो सन कहि जात न कैसे, साक बनिक मनि गुन गन जैसे।

बंदौं संत समान चित हित अनहित नहिं कोउ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोउ।
संत सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु।
बाल बिनय सुनि करि कृपा राम चरन रति देहु।३।

फुलवाई

समय जानि गुरु आयसु पाई, लेन प्रसून चले दोउ भाई।
भूप बागु वर देखेउ जाई, जहँ बसंत रितु रही लोभाई।
लागे बिटप मनोहर नाना, बरन बरन वर वेलि बिताना।
नव पल्लव फल सुमन सुहाये, निज संपति सुररूख लजाये।
चातक कोकिल कीर चकोरा, कूजत विहँग नटत कल मोरा।
मध्य बाग सरु सोह सुहावा, मनि सोपान विचित्र बनावा।
विमल सलिलु सरसिज वहुरंगा, जल खग कूजत गुंजत भृंगा।

बागु तड़ागु विलोकि प्रभु हरषे वन्धु समेत।
परम रम्य आरामु यहु जो रामहिं सुख देत।

चहुँ दिसि चितइ पूँछि मालीगन, लगे लेन दल फूल मुदित मन।
तेहि अवसर सीता तहँ आईं, गिरिजा पूजन जननि पठाईं।
संग सखी सब सुभग सयानी, गावहिं गीत मनोहर बानी।
सर समीप गिरिजा गृह सोहा, वरनि न जाइ देखि मनु मोहा।
मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता, गईं मुदित मन गौरि निकेता।
पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा, निज अनुरूप सुभग वरु माँगा।
एक सखी सिय संगु विहाई, गई रही देखन फुलवाई।
तेहि दोउ बन्धु बिलोके जाई, प्रेम बिबस सीता पहँ आई।

तासु दसा देखीं सखिन्ह पुलक गातु जलु नयन।
कहु कारनु निज हरषु कर पूछहिं सब मृदु बयन।

देखन बाग कुँअर दोउ आये, बय किसोर सब भाँति सुहाये।
स्याम गौर किमि कहउँ बखानी, गिरा अनयन नयन बिनु बानी।

सुनि हरषीं सब सखी सयानी, सिय हिय अति उतकंठा जानी।
एक कहइ नृप सुत तेइ आली, सुने जे मुनि सँग आये काली।
जिन्ह निज रूप मोहनी डारी, कीन्हे स्वबस नगर नर नारी।
वरनत छवि जहँ तहँ सब लोगू, अवसि देखिअहिं देखन जोगू।
तासु वचन अति सियहिं सोहाने, दरस लागि लोचन अकुलाने।
चलीं अग्र करि प्रिय सखिं सोई, प्रीति पुरातन लखै न कोई।

सुमिरि सीय नारद वचन, उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि, जनु सिसु मृगी सभीत।

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि, कहत लखन सन राम हृदय गुनि।
मानहु मदन दुन्दुभी दीन्ही, मनसा बिस्व विजय कहँ कीन्ही।
अस कहि फिरि चितये तेहि ओरा, सियमुख ससि भये नयन चकोरा।
भये बिलोचन चारु अचंचल, मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल।
देखि सीय सोभा सुखु पावा, हृदय सराहत बचनु न आवा।
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई, विरचि विस्व कहँ प्रगट देखाई।
सुन्दरता कहुँ सुन्दर करई, छविगृह दीप सिखा जनु वरई।
सब उपमा कवि रहे जुठारीं, केहि पटतरौं विदेहकुमारी।

सिय सोभा हिय वरनि प्रभु आपनि दसा विचारि।
बोले सुचि मन अनुज सन बचन समय अनुहारि।

तात जनकतनया यह सोई, धनुष जग्य जेहि कारन होई।
पूजन गौरि सखीं लै आई, करत प्रकास फिरहिं फुलवाई।
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा, सहज पुनीत मोर मन छोभा।
सो सबु कारन जान विधाता, फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता।

रघुवंसिन्ह कर सहज सुभाऊ, मनु कुपंथ पगु धरैं न काऊ।
मोहिं अतिसय प्रतीति मन केरी, जेहि सपनेहु पर नारि न हेरी।
जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी, नहिं पावहिं परतिय मनु डीठी।
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं, ते नर वर थोरे जग माहीं।

करत वतकही अनुज सन, मनु सिय रूप लोभान।
मुख सरोज मकरंद छवि, करै मधुप इव पान।

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता, कहँ गये नृप किसोर मन चिंता।
जहँ विलोक मृगसावकनैनी, जनु तहँ वरिस कमल सित स्रेनी।
लता ओट तव सखिन लखाये, स्यामल गौर किसोर सुहाये।
देखि रूप लोचन ललचाने, हरषे जनु निज निधि पहिचाने।
थके नयन रघुपति छवि देखे, पलकन्हिहूँ परिहरी निमेखे।
अधिक सनेह देह भइ भोरी, सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।
लोचन मग रामहि उर आनी, दीन्हें पलक कपट सयानी।
जव सिय सखिन्ह प्रेम वस जानी, कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी।

लता भवन ते प्रगट भये तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग विमल विधु जलद पटल विलगाइ।

सोभा सींव सुभग दोउ वीरा, नील पीत जलजाभ सरीरा।
मोरपंख[1] सिर सोहत नीके, गुच्छ वीच विच कुसुम कली के।
भाल तिलक स्रम विन्दु सुहाये, स्रवन सुभग भूषन छवि छाये।
विकट भृकुटि कच घूँघरवारे, नव सरोज लोचन रतनारे।
चारु चिवुक नासिका कपोला, हास विलास लेत मन मोला।
मुख छवि कहि न जाइ मोहि पाहीं, जो विलोकि वहु काम लजाहीं।

उर मनि माल कंबु कल ग्रीवा , काम कलभ कर भुज बल सींवा ।
सुमन समेत बाम कर दोना , साँवरु कुँअरु सखी सुठि लोना ।
केहरि कटि पट पीत धर , सुखमा सील निधान ।
देखि भानुकुल भूषनहिं , बिसरा सखिन्ह अपान ।

धरि धीरजु एक आलि सयानी , सीता सन बोली गहि पानी ।
बहुरि गौरि करि ध्यान करेहू , भूप किसोर देखि किन लेहू ।
सकुचि सीय तब नयन उघारे , सनमुख दोउ रघुसिंघु निहारे ।
नख सिख देखि राम कर सोभा , सुमिरि पितापनु मनु अति छोभा ।
परबस सखिन लखीं जब सीता , भये गहरु सब कहहिं सभीता ।
पुनि आउब येहि बेरिआँ काली , अस कहि मन बिहँसी एक आली ।
गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी , भयेउ बिलंबु मातु भय मानी ।
धरि बड़ि धीर राम उर आने , फिरी अपनपउ पितु बस जाने ।
देखन मिस मृग बिहँग तरु , फिरैं बहोरि बहोरि ।
निरखि निरखि रघुबीर छबि , बाढ़ै प्रीति न थोरि ।

जानि कठिन सिव चाप बिसूरति , चलीं राखि उर स्यामल मूरति ।
प्रभु जब जात जानकी जानी , सुख सनेह सोभा गुन खानी ।
परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही , चारु चित्त भीती लिखि लीन्ही ।
गईं भवानी भवन बहोरी , बंदि चरन बोलीं कर जोरी ।
जय जय गिरिबरराजकिसोरी , जय महेस मुख चन्द चकोरी ।
जय गजबदन षडानन माता , जगत जननि दामिनि दुति गाता ।
नहिं तब आदि मध्य अवसाना , अमित प्रभाउ बेदु नहिं जाना ।
भव भव बिभव पराभव कारिनि , बिस्वबिमोहिनि स्वबस बिहारिनि ।

पति देवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेख।
सेवत तोहि सुलभ फल चारी, वरदायिनी पुरारि पिआरी।
देवि पूजि पद कमल तुम्हारे, सुर नर मुनि सब होंहि सुखारे।
मोर मनोरथु जानहु नीकें, बसहु सदा उर पुर सबही के।
कीन्हेउँ प्रगट न कारन तेहीं, अस कहि चरन गहे बैदेहीं।
विनय प्रेम वस भई भवानी, खसी माल मूरति मुसुकानी।
सादर सिय प्रसाद सिर धरेऊ, बोलीं गौरि हरषु हिय भरेऊ।
सुनु सिय सत्य असीस हमारी, पूजिहि मनकामना तुम्हारी।
नारद वचन सदा सुचि साँचा, सो बरु मिलहि जाहि मनु राँचा।
मनु जाहि राँचेउ मिलहि सो वरु सहज सुन्दर साँवरो।
करुनानिधानु सुजानु सील सनेह जानत रावरो।
यहि भाँति गौरि असीस सुनि सिय सहित हिय हरषीं अलीं।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मन्दिर चलीं।
जानि गौरि अनुकूल, सिय हिय हरषु न जात कहि।
मंजुल मंगल मूल, वाम अंग फरकन लगे।
('रामचरितमानस' से)

वनपथ में

पुर तें निकसीं रघुवीर वधू धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की पुट सूखि गये मधुराधर वै।
फिरि बूझति हैं 'चलनो अब केतिक पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै'।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै।१।

"जल को गये लक्खन हैं लरिका, परिखौ पिय छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े ।
पोंछि पसेउ बयारि करौं अरु पाँव पखारिहौं भूभुरि डाढ़े' ।
"तुलसी' रघुवीर प्रिया-स्रम जानि कै बैठि विलंव लौं कंटक काढ़े ।
जानकी नाह को नेह लख्यो, पुलको ननु वारि विलोचन बाढ़े ।२।

ठाढ़े हैं नौ द्रुम डार गहे, धनु काँधे धरे, कर सायक लै ।
विकटी भ्रुकुटी, वड़री अखियाँ, अनमोल कपोलन की छवि है ।
"तुलसी' असि मूरति आनि हिये जड़ डारि धौं प्रान निछावरि कै ।
स्रम-सीकर साँवरि देह लसै मनौ रासि महा तम तारक मैं ।३।

वनिता वनी स्यामल गौर के बीच, विलोकहु री सखी मोहि-सी ह्वै ।
मग जोग न कोमल क्यों चलिहैं ? सकुचाति मही पद-पंकज छ्वै ।
'तुलसी' सुनि ग्राम-वधू विथकीं, पुलकीं तन औ चले लोचन च्वै ।
सव भाँति मनोहर मोहन रूप, अनूप हैं भूप के वालक द्वै ।४।

साँवरे गोरे सलोने सुभाय, मनोहरता जिति मैन लियो है ।
वान कमान निषंग कसे, सिर सोहैं जटा, मुनिवेष कियो है ।
संग लिये बिधुवैनी वधू, रति को जेहि रंचक रूप दियौ है ।
पायन तौ पनहीं न, पयादेहि क्यों चलिहैं ? सकुचात हियो है ।५।

रानी मैं जानी अजानी महा, पवि पाहन हू ते कठोर हियो है ।
राजहु काज अकाज न जान्यो, कह्यो तिय को जिन्न कान कियो है ।
ऐसी मनोहर मूरति ये, विछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है ।
आँखिन में, सखि ! राखिबे जोग, इन्हें किमि कै वनवास दियो है ।६।

सीस जटा, उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल तिरीछी सी भौंहैं।
तून सरासन बान धरे, 'तुलसी' बन-मारग में सुठि सोहैं।
सादर बारहिं बार सुभाव चितै तुम त्यौं हमरौ मन मोहैं।
पूछति ग्राम बधू सिय सों, 'कहो साँवरे से सखि रावरे को हैं ?' ।७।

सुनि सुन्दर बैन सुधारस साने, सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं, समझाइ कछू मुसकाइ चली।
'तुलसी' तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन लाहु अली।
अनुराग तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली ।८।

('कवितावली' से)

बन चले जाने पर

जब जब भवन बिलोकति सूनो।
तब तब बिकल होति कौसल्या दिन दिन प्रति दुख दूनो।
सुमिरत बाल-बिनोद राम के सुन्दर मुनि-मन-हारी,
होत हृदय अति सूल समुझि पद-पंकज अजिर-बिहारी।
को अब प्रात कलेऊ माँगत रूठि चलैगो, माई!
स्याम-तामरस-नैन स्रवन जल काहि लेउँ उर लाई!
जीवौं तौ बिपति सहौं निसि-बासर, मरौं तौ मन पछितायो,
चलत बिपिन भरि नयन राम को बदन न देखन पायो।
'तुलसिदास' यह दुसह दसा अति दारुन बिरह घनेरो,
दूरि करै को भूरि कृपा बिनु सोक-जनित रुज मेरो ।१।

जननी निरखति बान-धनुहियाँ।
बार-बार उर-नैननि लावति प्रभुजू की ललित पनहियाँ।
कबहुँ प्रथम-ज्यौं जाइ जगावति कहि प्रिय बचन सवारे,
"उठहु तात, बलि मातु बदन पर, अनुज सखा सब द्वारे।"
कबहुँ कहति यों, "बड़ी बार भइ, जाहु भूप पहँ, भैया,
बंधु बोलि जेइयँ जो भावै, गई निछावरि मैया।"
कबहुँ समुझि बन-गवन राम को, रहि चकि चित्र-लिखी सी।
'तुलसिदास', वह समय कहे तें लागति प्रीति सिखी सी।२।

ऐसे तैं क्यों कटु बचन कह्यो री!
'राम जाहु कानन' कठोर तेरो कैसें धौं हृदय रह्यो री।
दिनकर बंस, पिता दसरथ से, राम लखन से भाई,
जननी! तू जननी? तो कहा कहौं विधि केहि खोरि न लाई!
'हौं लहिहौं सुख राज-मातु ह्वै, सुत सिर छत्र धरैगो'—
कुल-कलंक, मल-मूल मनोरथ तव बिनु कौन करैगो!
ऐहैं राम, सुखी सब ह्वैहैं, ईस अजस मेरो हरिहैं,
'तुलसिदास" मोको बड़ो सोच है तू जनम कौन विधि भरिहै।३।

जो पै हौं मातु-मते महँ ह्वैहौं—
तौ जननी, जग में या मुख की कहाँ कलिमा ध्वैहौं।
क्यों हौं आजु होत सुचि सपथनि! कौन मानिहै साँची!
महिमा-मृगी कौन सुकृती की खल-बच-बिसिखन बाँची।
गहि न जाति रसना काहू की, कहो जाहि जोइ सूझै,
दीनबंधु कारुन्यसिंधु बिनु कौन हिये की बूझै।

'तुलसी', राम-वियोग-विषम-विष-बिकल नारि-नर भारी।
भरत-सनेह-सुधा सींचे सब भये तेहि समय सुखारी।४।

आली, हौं इन्हहिं बुझावौं कैसे !
लेत हिये भरि भरि पति को हित, मातु-हेतु सुत जैसे।
बार बार हिहिनात हेरि उत जो बोलै कोउ द्वारे।
अंग लगाइ लिये बारे तें करुनामय सुत प्यारे।
लोचन सजल, सदा सोवत से, खान पान बिसराये।
चितवत चौंकि नाम सुनि, सोचत राम-सुरति उर आये।
'तुलसी', प्रभु के बिरह बधिक हठि राजहंस-से जोरे।
ऐसेहु दुखित देखि हौं जीवति राम-लषन के घोंरे।५।

राघौ, एक बार फिरि आवौ,
ये बर बाजि बिलोकि आपने बहुरो बनहिं सिधावौ।
जे पय प्याइ पोखि कर-पंकज बार-बार चुचुकारे,
क्यौं जीवहिं मेरे राम लाड़िले, ते अब निपट बिसारे!
भरत सौगुनी सार करत हैं अति प्रिय जानि तिहारे,
तदपि दिनहिं-दिन होत झाँवरे मनहुँ कमल हिम मारे।
सुनहु पथिक, जो राम मिलहिं बन कहियो मातु सँदेसो।
'तुलसी' मोहिं और सबहिन तें इन्हको बड़ो अँदेसो।६।

('गीतावली' से)

चित्रकूट में भरत

तव केवट ऊँचे चढ़ि धाई, कहेउ भरत सन भुजा उठाई।
नाथ देखिअहिं बिटप बिसाला, पाकरि जंबु रसाल तमाला।
तिन्ह तरुवरन्ह मध्य बटु सोहा, मंजु बिसालु देखि मनु मोहा।
नील सघन पल्लव फल लाला, अबिरल छाँह सुखद सब काला।
मानहु तिमिर अरुनमय रासी, बिरची बिधि सँकेलि सुखमा सी।
ये तरु सरित समीप गोसाईं, रघुवर परनकुटी जहँ छाई।
तुलसी तरुबर बिबिध सोहाये, कहुँ कहुँ सिय कहुँ लखन लगाये।
बट छायाँ बेदिका बनाई, सिय निज पानि सरोज सुहाई।
जहाँ बैठि मुनि गन सहित, नित सिय रामु सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब, आगम निगम पुरान।१।

सखा बचन सुनि बिटप निहारी, उमगे भरत बिलोचन बारी।
करत प्रनाम चले दोउ भाई, कहत प्रीति सारद सकुचाई।
हरषहिं निरखि राम पद अंका, मानहुँ पारसु पायेउ रंका।
रज सिर धरि हिय नयनन्हि लावहिं, रघुवर मिलन सरिस सुख पावहिं।
देखि भरत गति अकथ अतीवा, प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा।
सखहि सनेह बिवस मग भूला, कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला।
निरखि सिद्ध साधक अनुरागे, सहज सनेहु सराहन लागे।
होत न भूतल भाउ भरत को, अचर सचर चर अचर करत को।
पेमु अमिअ मंदरु बिरहु भरत पयोधि गँभीर,
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर।२।

सखा समेत मनोहर जोटा, लखेउ न लखन सघन वन ओटा।
भरत दीख प्रभु आस्रमु पावन, सकल सुमंगल सदनु सुहावन।
करत प्रवेस मिटे दुख दावा, जनु जोगी परमारथु पावा।
देखे भरत लखन प्रभु आगें, पूँछे वचन कहत अनुरागें।
सीस जटा कटि मुनि पट बाँधें, तून कसें कर सरु धनु काँधें।
वेदी पर मुनि साधु समाजू, सीय सहित राजत रघुराजू।
वलकल वसन जटिल तनु स्यामा, जनु मुनि वेष कीन्ह रति कामा।
कर कमलनि धनु सायकु फेरत, जिय की जरनि हरत हँसि हेरत।

लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु।
ग्यान सभाँ जनु तनु धरें भगति सच्चिदानंदु।३।

सानुज सखा समेत मगन मन, विसरे हरष सोक सुख दुख गन।
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं, भूतल परे लकुट की नाईं।
वचन सपेम लखन पहिचानें, करत प्रनामु भरतु जियँ जानें।
वंधु सनेह सरस येहिं ओरा, उत साहिव सेवा बस जोरा।
मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई, सुकवि लखन मन की गति भनई।
रहे राखि सेवा पर भारू, चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू।
कहत सपेम नाइ महि माथा, भरत प्रनाम करत रघुनाथा।
उठे राम सुनि पेम अधीरा, कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा।

बरवस लिये उठाइ उर लाये कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि विसरे सवहि अपान।४।

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी, कवि कुल अगम करम मन बानी।
परम पेम पूरन दोउ भाई, मन बुधि चित अहमिति बिसराई।

कहहु सुपेमु प्रगट को करई, केहि छायाँ कवि मति अनुसरई।
कविहि अरथ आखर बल साँचा, अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा।
अगम सनेहु भरत रघुवर को, जहँ न जाइ मनु विधि हरि हर को।
सो मइँ कुमति कहउँ केहि भाँती, बाजु सुराग कि गाँडर ताँती।
मिलनि विलोकि भरत रघुबर की, सुरगन सभय धकधकी धरकी।
समुझाये सुरगुरु जड जागे, बरषि प्रसून प्रसंसन लागे।

मिलि सपेम रिपुसूदनहिं केवट भेंटेउ राम।
भूरि भाँय भेंटे भरत लछिमन करत प्रनाम।५।

भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई, बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई।
पुनि मुनि गन दुहुँ भाइन्ह वंदे, अभिमत आसिष पाइ अनंदे।
सानुज भरत उमगि अनुरागा, धरि सिर सिय पद पदुम परागा।
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाये, सिर कर कमल परसि बैठाये।
सीयँ असीस दीन्हि मन माहीं, मगन सनेह देह सुधि नाहीं।
सब बिधि सानुकूल लखि सीता, भे निसोच उर अपडर बीता।

('रामचरितमानस' से)

विनयावली

ऐसी मूढता या मन की,
परिहरि रामभगति सुरसरिता आस करत ओसकन की!
धूम समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की,
नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होत लोचन की।
ज्यों गच-काँच विलोक सेन जड़ छाँह आपने तन की,
टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की।

कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि जानत हौ गति जन की।
'तुलसिदास' प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की। १।

अब लौं नसानी अब न नसैहों।
रामकृपा भवनिसा सिरानी जागे फिर न डसैहों।
पायो नाम चारु चिंतामनि, उर कर तें न खसैहों।
स्याम रूप सुनि रुचिर कसौटी चित कंचनहिं कसैहों।
परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहों।
मन-मधुकर पन करि 'तुलसी' रघुपति-पद कमल बसैहों। २।

मैं हरि पतित पावन सुने।
हौं पतित, तुम पतितपावन, दोउ बानक बने।
व्याध गनिका गज अजामिल साखि निगमनि भने।
और अधम अनेक तारे, जात कापै गने ?
जानि नाम अजानि लीन्हें नरक जमपुर मने।
दास 'तुलसी' सरन आयो राखि ले अपने। ३।

ऐसो को उदार जग माहीं ?
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं।
जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ज्ञानी।
सो गति दई गीध सबरी कहँ प्रभु न अधिक कर जानी।
जो संपति दस सीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्हीं।
सोइ संपदा बिभीषन कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्हीं।
'तुलसिदास' सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो,
तौ भजु राम, काम सब पूरन करहिं कृपानिधि तेरो। ४।

कबहुँक हौं येहि रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपा तें सन्त सुभाउ गहौंगो।
जथालाभु सन्तोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित-निरत निरन्तर मन क्रम वचन नेमु निवहौंगो।
परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर गुन, नहिं दोष कहौंगो।
परिहरि देहजनित चिंता, दुख सुख सम बुद्धि सहौंगो।
'तुलसिदास' प्रभु यहि पथ रहि अविरल हरिभगति लहौंगो। ५।

मन पछितैहै औसर बीते।
दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु करम वचन अरु ही ते।
सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न काल बली ते।
हम हम करि धन धाम सँवारे, अन्त चले उठि रीते।
सुत बनितादि जानि स्वारथ-रत न करु नेह सबही ते।
अन्तहुँ तोहिं तजैंगे पाँवर, तू न तजै अबही ते।
अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जी ते।
बुझै न काम अगिनि 'तुलसी' कहुँ विषय-भोग बहु घी ते। ६।

('विनयपत्रिका' से)

चातक की अनन्यता

एक भरोसो, एक बल, एक आस विस्वास।
एक राम घनस्याम हित, चातक 'तुलसीदास'। १।
बरषि परुष पाहन पयद, पंख करौ टुक टूक।
'तुलसी' परी न चाहिये, चतुर चातकहि चूक। २।

मान राखिबो माँगिबो, पिय सों नित नव नेहु।
'तुलसी' तीनिउ तब फबैं, जौ चातक मत लेहु। ३।

'तुलसी' चातक माँगनो, एक सबै घन दानि।
देत जो भूभाजन भरत, लेत जो घूँटक पानि। ४।

नहिं जाचत, नहिं संग्रही, सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी माँगनेहि, को बारिद बिन देइ। ५।

चरग चंगुगत चातकहि, नेम प्रेम की पीर।
'तुलसी' परबस हाड़ पर, परिहै पुहुमी नीर। ६।

बध्यो बधिक पर्यो पुन्य जल, उलटि उठाई चोंच।
'तुलसी' चातक प्रेम-पट, मरतहु लगी न खोंच। ७।

अंड फोरि कियो चेटुवा, तुष पर्यो नीर निहारि।
गहि चंगुल चातक चतुर, डार्यो बाहिर बारि। ८।

('दोहावली से')

अभ्यास और विमर्श

१. व्याख्या कीजिये और काव्य-सौष्ठव दिखलाइये—
वन्दना—मुद मंगलमय...समाज प्रयाग।
फुलवाई—चितवति चकित...मन सकुचानी।
वनपथ में—छन्द २, ७ और ८।
वन चले जाने पर—पद ४, ६।
चित्रकूट में भरत—पेमु अमिय...रघुवीर। मिलनि...ताँती।
विनयावली—पद ४, ५।
चातक की अनन्यता—दोहा १, ४, ६ और ७।

२. अन्तःकथाएँ बतलाइये—

बालमीकि नारद···निज होनी । सुमिरि सीय नारद बचन···पुनीत । पेमु अमिअ···रघुबीर । व्याध गनिका गज अजामिल साखि निगमनि भने । सहसबाहु···बली ते ।

३. अलंकार निर्देश कीजिये—साधु चरित···फल जासू । मुद मंगल-मय···प्रयाग । सो मो सन···गुन जैसे । जहँ बिलोक···सित स्रेनी । लता भवन···बिलगाइ । जल को गये···बाढ़े । अनुराग···कंजकली । जननी निरखति···सिखी सी । पेमु अमिअ···रघुबीर । स्याम रूप···कसैहों ।

४. (क) इन उद्धरणों में जो मात्रिक छन्द प्रयुक्त हुए हैं उनके नाम बतला कर लक्षण स्पष्ट कीजिये ।

(ख) इनमें प्रयुक्त सवैया छन्दों के नाम और लक्षण लिखिये ।

५. फुलवाई में काव्य-सौष्ठव का उद्‌घाटन कीजिये ।

६. फुलवाई और वन पथ में के अन्तर्गत तुलसी के मर्यादा एवं शील के निरूपण की कुशलता का वर्णन कीजिये ।

७. वन चले जाने पर में उद्‌धृत पदों की सहायता से कौशल्या के वात्सल्य स्नेह के प्रदर्शन की विशिष्टता दिखलाइये ।

८. विनयावली के पदों से तुलसी की भक्ति का स्वरूप प्रदर्शित कीजिये ।

९. तुलसी के द्वारा प्रयुक्त काव्य की विविध शैलियों और भाषा के लालित्य का निरूपण कीजिये । अपने निष्कर्ष की पुष्टि के लिए यथेष्ट अवतरण दीजिए ।

१०. "तुलसी की रामभक्ति में उपास्य के प्रति अनन्यता, मानसिक उत्कर्ष एवं लोक-संग्रह का समावेश है ।" सिद्ध कीजिये ।

केशवदास

सीता-स्वयंवर

खंडपरसु को सोभिजै, सभा मध्य कोदंड।
मानहु सेष असेषधर-धरनहार बरिवंड।

सोभित मंचन की अवली गजदंतमई छवि उज्ज्वल छाई।
ईस मनौ वसुधा में सुधारि सुधाधर मंडल मंडि जोन्हाई।
ता महँ 'केसवदास' विराजत राजकुमार सबै सुखदाई।
देवन स्यौं जनु देवसभा सुभ सीय स्वयंबर देखन आई।

विजय—

दिगपालन की भुवपालन की लोकपालन की किन मातु गई च्वै।
कत भाँड़ भये उठि आसन ते कहि 'केसव' संभु सरासन को छ्वै।
काहु चढ़ायो न काहु नवायो न काहु उठायो न आँगुरिहू द्वै।
स्वारथ भो न भयो परमारथ आये ह्वै बीर चले बनिता ह्वै।

सातहु दीपन के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने।
बीस विसे व्रत भंग भयो सु कहौ अब 'केसव' को धनु ताने।
सोक की आगि लगी परिपूरन आइ गये घनस्याम बिहाने।
जानकि के जनकादिक के सब फूलि उठे तरु पुन्य पुराने।

आइ गये ऋषिराजहिं लीने, मुख्य सतानँद विप्र प्रवीने।
देखि दुऊ भये पाँयनि लीने, आसिष सीरषबासु लै दीने।

विश्वामित्र—

'केसव' ये मिथिलाधिप हैं जग में जिन कीरति-बेलि बई है।
दान कृपान बिधानन सों सिगरी बसुधा जिन हाथ लई है।
अंए छ सातक आठक सों भव तीनिहु लोक में सिद्धि भई है।
वेद त्रयी अरु राजसिरी परिपूरनता सुभ योगमई है।

जनक—

जिन अपनो तन स्वर्न, मेलि तपोमय अग्नि में।
कीन्हों उत्तम बर्न, तेई विस्वामित्र ये।

लक्ष्मण—

जन राजवंत। जग जोगवंत।
तिनको उदोत। केहि भाँति होत।

श्रीराम—

सब छत्रिन आदि तै काहु छुई न छुए बिजनादिक बात डगै।
न घटै न बढ़ै निसि बासर 'केसव' लोकन को तम तेज भगै।
भव भूषन भूषित होत नहीं, मदमत्त गजादि मसी न लगै।
जलहू थलहू परिपूरन श्री निमि के कुल अद्भुत जोति जगै।

जनक—

यह कीरति और नरेसन सोहै।
सुन देव अदेवन को मन मोहै।
हम को बपुरा सुनिये ऋषिराई।
सब गाउँ छ सातक की ठकुराई।

विश्वामित्र—

आपने आपने ठौरनि तौ भुवपाल सबै भुव पालै सदाई।
केवल नामहिं के भुवपाल कहावत हैं भुव पालि न जाई।
भूपन की तुमही धरि देह, विदेहन में कल कीरति गाई।
'केसव' भूषन की भुवि भूषन, भू-तन तें तनया उपजाई।

जनक—

लोकन की रचना रचिबे को, जहाँ परिपूरन बुद्धि बिचारी।
ह्वै गये 'केसवदास' तहीं सब भूमि अकास प्रकासित भारी।
सुद्ध सलाक समान लसी, अति रोषमई द्दगदीठि तिहारी।
होत भये तब सूर सुधाधर, पावक सुभ्र सुधा रँगधारी।

ये सुत कौन के सोभहिं साजे ?
सुन्दर स्यामल गौर बिराजे।
जानत हौं जिय सोदर दोऊ।
कै कमला बिमला-पति कोऊ ?

विश्वामित्र—

दानिन से सील पर दान के प्रहारी दिन
दानवारि ज्यों निदान देखिये सुभाय के।
दीप-दीपहू के अवनीपन के अवनीप,
पृथु सम 'केसोदास' दास द्विज गाय के।
आनँद के कंद सुरपालक-से बालक ये,
परदार प्रिय साधु मन बच काय के।

देह धर्मधारी पै विदेहराजजू से राज,
राजत कुमार ऐसे दसरथराय के।
रघुनाथ सरासन चाहत देख्यो।
अति दुष्कर राज समाजनि लेख्यो।

जनक—

ऋषि है वह मन्दिर माँझ मँगाऊँ?
गहि ल्यावहिं हौं जनयूथ बुलाऊँ?
वज्र ते कठोर है कैलास ते विसाल काल-
दंड ते कराल सब काल काल गावई।
'केसव' त्रिलोक के विलोकि हारे देव सब,
छोड़ि चंद्रचूड़ एक और को चढ़ावई।
पन्नग प्रचंड पति प्रभु की पनच पीन,
पर्वतारि पर्वत प्रभा न मान पावई।
विनायक एक हू पै आवै न पिनाक, ताहि
कोमल कमलपानि राम कैसे ल्यावई।

विश्वामित्र—

राम हत्यो मारीच जेहि, अरु ताडका सुबाहु,
लक्ष्मन को यह धनुष दै, तुम पिनाक को जाहु।

जनक—

सिगरे नरनायक असुर विनायक राच्छसपति हिय हारि गये।
काहु न उठायो थल न छोड़ायो टर्‍यो न टारो भीत भये।

इन राजकुमारनि अति सुकुमारनि लै आये हौ पैज करै।
व्रत भंग हमारो भयो तुम्हारो ऋषि तप तेज न जानि परै।

विश्वामित्र—

सुनि रामचन्द्र कुमार, धनु आनिये इक वार।
निज बेगि ताहि चढ़ाव, जस लोक लोक बढ़ाव।

ऋषिहिं देखि हरषै हियो, राम देखि कुँभिलाइ।
धनुष देखि डरपै महा, चिंता चित्त डोलाइ।

रामचन्द्र कटि सो पटु बाँध्यो, लीलयैव हर को धनु साध्यो।
नेक ताहि कर-पल्लव सों छ्वै, फूल-मूल ज्यों टूक कर्‌यो द्वै।

उत्तम गाथ सनाथ जबै धनु श्री रघुनाथ जू हाथ कै लीनो।
निर्गुन ते गुनवंत कियो सुख 'केसव' सन्त अनन्तन दीनो।
ऐंचो जहीं तबहीं कियो संजुत तिच्छ कटाच्छ नराच नवीनो।
राजकुमारि निहारि सनेह सों संभु को साँचो सरासन कीन्हो।

प्रथम टंकोर झुकि झारि संसार मद,
चंड कोदंड रह्यो मंडि नवखण्ड को।
चालि अचला अचल घालि दिगपाल-बल,
पालि ऋषिराज के वचन परचंड को।
सोधु दै ईस को बोधु जगदीस को,
क्रोध उपजाइ भृगुनन्द बरिबंड को।
बाधि बर स्वर्ग को साधि अपवर्ग,
धनु भंग को सब्द गयो भेदि ब्रह्मंड को।

('रामचन्द्रिका' से)

अभ्यास और विमर्श

१. 'अंग छ सातक···भई है' का तात्पर्य समझाइये।

२. 'जिन अपनो···विस्वामित्र ये' तथा 'लोकन की रचना···बुद्धि विचारी' की अन्तःकथाएँ बतलाइये।

३. 'सातहु दीपन···तरु पुन्य पुराने' की व्याख्या कर के उसका रचना-सौष्ठव दिखलाइये।

४. 'दानिन के सील···दशरथ राय के' का अर्थ और अलंकार बतलाइये।

५. 'उत्तम गाथ सनाथ···कीन्हो' की व्याख्या कीजिये और इसका काव्य-सौष्ठव समझाइये।

६. अंतिम छन्द में कथित धनुर्भंग के शब्द ने एक साथ कौन-कौन से कार्य किये ? उनको स्पष्ट कीजिये। इसमें कौन सा अलंकार है ?

७. अलंकार बताइये—खंडपरसु···बरिबंड। सोभित मंचन···देखन आई। सत्र छत्रिन···जोति जगै। दानिन के सील···दसरथराय के।

८. इस अवतरण में कौन कौन से वर्णवृत्त हैं ? उनके लक्षण बतला कर उन्हें स्पष्ट कीजिये।

९. केशवदास के रचे कथोपकथन की विशेषताएँ प्रकट कीजिये।

१०. केशवदास के वर्णन-कौशल का विवेचन कीजिये।

११. 'सूर सूर तुलसी ससी, उडगन केसवदास' के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कीजिये।

षड्-ऋतु-वर्णन

केतकि असोक नव चम्पक, बकुल कुल
कौन धौं बियोगिनी कौं ऐसी बिकराल है।
'सेनापति' साँवरे की सूरति की सुरति करि
सुरति कराइ करि डारत बिहाल है।
दच्छिन पवन एती ताहू की दवन जऊ,
सूनौ है भवन परदेस प्यारो लाल है।
लाल हैं प्रवाल फूले देखत बिसाल जऊ
फूले और साल पै रसाल उर-साल है।१।

वृष कौं तरनि, तेज सहसौं किरनि करि
ज्वालन के जाल बिकराल बरसत है।
तचति धरनि जग जरत झरनि सीरी
छाँह कौं पकरि पंथी-पंछी बिरमत है।
'सेनापति' नैंक दुपहरी के ढरत होत,
धमका बिषम ज्यों न पात खरकत है।
मेरे जान पौनों सीरी ठौर कौं पकरि कौनौं
घरी एक बैठि कहूँ घामै बितवत है।२।

'सेनापति' उनये नये जलद सावन के,
चारिहू दिसान घुमरत भरे तोइ कै।

सोभा सरसाने न बखाने जात कैहूँ भाँति,
आने हैं पहार मानौं काजर के ढोइ कै।
घन सौं गगन छयो तिमिर सघन भयौ,
देखि न परत मानौं रवि गयौ खोइ कै।
चारि मास भरि स्याम निसा के भरम मानि
मेरे जान याही तै रहत हरि सोइ कै। ३।

कातिक की राति थोरी थोरी सियराति, सेना-
पति है सुहाति, सुखी जीवन के गन हैं।
फूले हैं कुमुद, फूली मालती सघन बन,
फूलि रहे तारे मानौं मोती अनगन हैं।
उदित विमल चन्द, चाँदनी छिटकि रही
राम कैसौ जस अध-ऊरध गगन हैं।
तिमिर हरन भयौ, सेत है बरन सब,
मानहु जगत छीर-सागर मगन हैं। ४।

सीत को प्रबल 'सेनापति' चढ़्यो कोपि दल
निबल अनल, गयो सूर सियराइ कै।
हिम के समीर, तेई बरषैं विषम तीर
रही है गरम भौन कोनन में जाइ कै।
धूम नैन बहैं लोग आगि पर गिरे रहैं
हिये सौं लगाइ रहैं नैंक सुलगाइ कै।
मानौं भीत जानि महासीत तैं पसारि पांनि
छतियाँ की छाँह राख्यौ पावक छिपाइ कै। ५।

सिसिर मैं ससि कौं सरूप पावै सविताऊ,
घाम हूँ मैं चाँदनी की दुति दमकति है।
"'सेनापति' होति सीतलता है सहस गुनी,
रजनी की झाँईं वासर मैं झमकति है।
चाहत चकोर सूर ओर दृग छोर करि,
चकवा की छाती तजि धीर धसकति है।
चंद के भरम होत मोद है कुमोदनी कौं,
ससि संक पंकजनी फूलि न सकति है। ६।

सिसिर तुषार के बुखार से उखारत है,
पूस बीते होत सून हाथ पाँव ठिरि कै।
द्यौस की छुटाई की बड़ाई बरनी न जाइ,
'सेनापति' पाई कछु सोचि कै सुमिरि कै।
सीत तैं सहसकर सहसचरन ह्वैकै,
ऐसे जात भाजि तम आवत है घिरि कै।
जौ लौं कोक कोकी को मिलत तौलौं होत राति,
कोक अधबीच ही में आवत है फिर कै। ७।

अभ्यास और विमर्श

१. आशय स्पष्ट कीजिये'''सेनापति नैंक'''खरकत है। चारि मास'''सोइ कै।

२. 'चंद के'''न सकति हैं' तथा 'जौ लौं'''फिरि कै' में 'कवि-समय' बतलाइए।

३. छंद ३, ५ और ६ की व्याख्या कीजिये।

४. उक्ति का सौंदर्य स्पष्ट करके अलंकार बतलाइये—लाल हैं··· साल है। मेरे जान···चितवत है। मानहु···मगन हैं। मानौं भीत··· छिपाइ कै।

५. उद्धृत अवतरण दे कर सेनापति के प्रकृति-चित्रण की विशेषताएँ प्रकट कीजिये।

६. "सेनापति ने प्रकृति-चित्रण में अलंकारों का चमत्कार दिखलाया है अथवा उसका उद्दीपन के लिए उपयोग किया है?" इसका विवेचन कीजिये।

———

सतसई-सार

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँई परैं, स्यामु हरित दुति होय। १।

सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
यहि बानक मों मन सदा, वसौ विहारी लाल। २।

मोर मुकुट की चन्द्रिकनु, यौं राजत नँद-नंद।
मनु ससिसेखर की अकस, किय सेखर सतचंद। ३।

सोहत ओढ़े पीत पट, स्याम सलोने गात।
मनो नीलमनि सैल पर, आतप पर्‍यो प्रभात। ४।

तजि तीरथ हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुरागु।
जिहिं ब्रजकेलि-निकुंज-मग, पग-पग होतु प्रयागु। ५।

अधर धरत हरि कैं परत, ओठ दीठि पट ज्योति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्रधनुष रँग होति। ६।

कीने हूँ कोटिन जतन, अब कहि काढ़ै कौनु?
भौ मन मोहन-रूपु मिलि, पानी मैं कौ लौनु। ७।

अजौं तर्‍यौना ही रह्यौ, स्रुति सेवक इक रंग।
नाक बास वेसरि लह्यौ, बसि मुकुतन कै संग। ८।

तो पर वारौं उरबसी, सुनि राधिके, सुजान।
तू मोहन कैं उर बसी, ह्वै उरबसी समान। ९।

बतरस-लालच लाल कीं, मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै, भौंहन हँसै, दैन कहै नटि जाय।१०।

पाय महावरु दैन कौं, नाइनि बैठी आय।
फिरि फिरि जानि महावरी, एड़ी मीड़ति जाय।११।

जब जब वै सुधि कीजियै, तब तब सब सुधि जाँहि।
आँखिनु आँखि लगी रहै, आँखैं लागति नाँहि।१२।

हरि छवि जल जब तैं परे, तब तैं छिनु बिछुरैं न।
भरत ढरत बूड़त तिरत, रहटघरी लौं नैन।१३।

नेह न नैननि को कछू, उपजी बड़ी बलाय।
नीर भरे नित प्रति रहैं, तऊ न प्यास बुझाय।१४।

केसरि कै सरि क्यों सकै, चम्पकु कितकु अनूपु।
गात रूप लखि जातु दुरि, जातरूप कौ रूपु।१५।

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों ज्यों बूड़े स्याम रँगु, त्यों त्यों उज्जलु होय।१६।

डीठि न परतु समान दुति, कनकु कनक सैं गात।
भूषन कर करकस लगत, परसि पिछाने जात।१७।

अंग अंग नग जगमगति, दीपसिखा सी देह।
दिया बढ़ाये हूँ रहै, बड़ो उजेरो गेह।१८।

लिखन बैठि जाकी सबी, गहि गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर।१९।

दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर-चित प्रीति।
परति गाँठि दुरजन हियैं, दई नई यह रीति। २०।

मानहु विधि तन अच्छ छवि, स्वच्छ राखिवैं काज।
दृग-पग पोंछन कौं करे, भूषन पायन्दाज। २१।

सघन कुंज छाया सुखद, सीतल सुरभि समीर।
मनु ह्वै जात अजौं वहै, उहि जमुना के तीर। २२।

भाल लाल वेंदी ललन, आखत रहे विराजि।
इन्दु कला कुज में वसी, मनहु राहु भय भाजि। २३।

इत आवति चलि जाति उत, चली छ-सातक हाथ।
चढ़ी हिंडौरैं सी रहै, लगी उसासनु साथ। २४।

करी विरह ऐसी तऊ, गैल न छाँड़त नीचु।
दीने हूँ चसमा धरै, चाहै लहै न मीचु। २५।

गोपिन के अँसुवन भरी, सदा असोस अपार।
डगर डगर नै ह्वै रही, वगर वगर के वार। २६।

नाचि अचानक ही उठे, विन पावस वन मोर।
जानत हौं नन्दित करी, यहि दिसि नंदकिसोर। २७।

रनित भृंग घंटावली, झरत दान मधु नीरु।
मंद मंद आवत चल्यो, कुंजरु कुंज समीरु। २८।

छकि रसाल सौरभ सने, मधुप माधवी गंध।
ठौर ठौर झूमत झपत, भौंर झौंर मधु अंध। २९।

चुवत स्वेद मकरंद कन, तरु तरु तर बिरमाय।
आवत दक्खिन तें चल्यो, थक्यो बटोही वाय। ३०।

कहलाने एकत बसत, अहि मयूर मृग बाघ।
जगतु तपोवन सौं कियो, दीरघ दाघ निदाघ। ३१।

अरुन सरोरुह कर चरन, दृग खंजन मुख चंद।
समय आय सुन्दर सरद, काहि न करत अनंद। ३२।

लगत सुभग सीतल करनि, निसि सुख दिन अवगाहि।
माह ससी भ्रम सूर तन, रहत चकोरी चाहि। ३३।

ज्यों ह्वैहौं त्यों होउँगौ, हौं हरि अपनी चाल।
हठु न करौ, अति कठिनु है, मो तारिबो गुपाल। ३४।

करौ कुवत जगु कुटिलता, तजौं न दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल हिय, बसत त्रिभंगी लाल। ३५।

कब को टेरत दीन रट, होत न स्याम सहाय।
तुमहूँ लागी जगत गुरु, जगनायक जग बाय। ३६।

नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि।
मनो तज्यो तारन बिरद, बारक बारन तारि। ३७।

थोरेई गुन रीझते, बिसराई वह बानि।
तुमहूँ कान्ह मनो भये, आज काल्हि के दानि। ३८।

मोहूँ दीजे मोष, ज्यों अनेक अधमन दयो।
जौ बाँधे ही तोष, तौ बाँधौ अपने गुननि। ३९।

स्वारथु सुकृत न स्रमु बृथा, देखि विहंग विचारि।
बाज पराये पानि पर, तू पच्छीनु न मारि। ४० ॥

करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि।
ए गन्धी मति-मन्द तू, इतर दिखावत काहि। ४१ ॥

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सो बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब में, अपत कँटीली डार। ४२ ॥

नहिं पावस रितुराज यह, सुनि तरुवर मत भूल।
अपत भये बिन पाइहै, क्यों नव दल फल फूल। ४३ ॥

जप माला छापा तिलक, सरै न एकौ कामु।
मन काँचै नाचै बृथा, साँचै राँचै रामु। ४४ ॥

अभ्यास और विमर्श

१. तीसरे, पाँचवें, छठे, इक्कीसवें और अट्ठाइसवें दोहे में प्रयुक्त अलंकारों से वर्ण्य विषय की उत्कृष्टता कैसे प्रकट होती है ?

२. व्याख्या कीजिये और काव्य-सौष्ठव प्रदर्शित कीजिये—दोहा १, ४, ११, १६, २२ और २३।

३. इन दोहों में अलंकार बतलाइये—३, ७, ८, ९, १२, १४, १५, १६, २० और २८।

४. बिहारी के विरह-वर्णन की विशेषताओं का वर्णन कीजिये। उपयुक्त उद्धरण दे कर अपने निष्कर्ष को पुष्ट कीजिये।

५. "बिहारी की रचना में उक्ति-सौष्ठव के साथ व्यापारों और मानसिक दशाओं का भी ऐसा वर्णन है जिससे मन मुग्ध हो जाता है।" इसका तात्पर्य समझाइये।

भूषण

शिवा-शौर्य

साजि चतुरंग वीर रंग में तुरंग चढ़ि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
'भूषन' भनत नाद विहद नगारन के,
नदी नद मद गैवरन के रलत है।
ऐल-फैल खैल-भैल खलक मैं गैल-गैल,
गजन की ठेल-पेल सैल उसलत है।
तारा सों तरनि धूरि धारा मैं लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है।१।

प्रेतिनी पिसाचऽरु निसाचर निसाचरीहू,
मिलि मिलि आपुस में गावत वधाई है।
भैरों भूत प्रेत भूरि भूधर भयंकर से,
जुत्थ-जुत्थ जोगिनी जमात जुरि आई है।
किलकि-किलकि कै कुतूहल करति काली,
डिम-डिम डमरू दिगंबर बजाई है।
सिवा पूछैं सिव सों समाजु आजु कहाँ चली,
काहू पै सिवा नरेस भृकुटी चढ़ाई है।२।

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग,
ताहि खरो कियो छ-हजारिन के नियरे।

जानि गैर मिसिल गुसैल गुसा धारि उर,
कीन्हों न सलाम न बचन बोले सियरे।
'भूषन' भनत महावीर बलकन लाग्यो,
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे।
तमक ते लाल मुख सिवा को निरखि भये
स्याह मुख नौरँग सिपाह मुख पियरे। ३।

छूटत कमान अरु गोली तीर बानन के,
होत कठिनाई मुरचानहू की ओट में।
ताहि समय सिवराज हाँक मारि हल्ला कियो,
दावा बाँधि परा हल्ला बीरबर जोट में।
'भूषन' भनत तेरी हिम्मत कहाँ लौं कहौं,
किम्मति इहाँ लगि है जाकी भट झोट में।
ताव दै दै मूछन कँगूरन पै पाँव दै दै,
अरि मुख घाव दै दै कूदि परे कोट में। ४।

जिन फन फूतकार उड़त पहार भारे,
कूरम कठिन जनु कमल विदलिगो।
विषज्वाल ज्वालामुखी लवलीन होत जिन
झारन चिकारि मद दिग्गज उगलिगो।
कीन्हों जिन पान पय पान सो जहान सब,
कोलहू उछलि जलसिंधु खलभलिगो।
खग्ग खगराज महाराज सिवराज तेरो,
अखिल भुजंग दल-मुगल निगलिगो। ५।

सूबा निरानँद बादरखान में लोगन बूझत ब्योंत बखानो,
दुग्ग सवै सिवराज लिये धरि चारु बिचारु हिये यह आनो।
'भूषन' बोलि उठे सिगरे हुतो पूना में साइतखान को थानो,
जाहिर है जग में जसवंत लियो गढ़सिंह में गीदरवानो। ६।

('शिवा-बावनी' से)

छत्रसाल-छटा

भुज भुजगेस की वै संगिनी भुजंगिनी सी,
खेदि खेदि खाती दीह दारुन दलन के।
बखतर पाखरन वीच धँसि जाति मीन,
पैरि पार जात परवाह ज्यों जलन के।
रैयाराव चम्पति को छत्रसाल महाराज,
'भूषन' सकै करि बखान को बलन के।
पच्छी पर-छीने ऐसे परे पर छीने बीर,
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के। १।

रैयाराव चम्पति को चढ़ो छत्रसाल सिंह,
'भूषन' भनत गजराज जोम जमकैं।
भादौं की घटा सी उठी गरद, गगन घिरे,
सेलैं समसेरैं फिरैं दामिनी-सी दमकैं।
खान उमरावन के आन राजा रावन के,
सुनि सुनि उर लागैं घन जैसी घमकैं।
बैयर बगारन की अरि के अगारन की,
लाँघतीं पगारन नगारन की धमकैं। २।

अत्र गहि छत्रसाल खिझ्यो खेत वेतवै के,
उत ते पठानन हू कीन्हीं झुकि झपटैं।
हिम्मति वड़ी कै गवडी के खिलवारन लौं,
देत सै हजारन हजार वार चपटैं।
'भूषन' भनत काली हुलसी असीसन कौं,
सीसन कौं ईस की जमाति जोर जपटैं।
समद सौं समद की सेना ज्यौं बुँदेलन की,
सेलैं समसेरैं भईं वाड़व की लपटैं। ३।

चाकचक चमू के अचाकचक चहुँ ओर,
चाक सो फिरति धाक चम्पति के लाल की।
'भूषन' भनत पातसाही मारि जेरि कीन्हीं,
काहू उमराव ना करेरी करवाल की।
सुनि सुनि रीति बिरदैत के वड़प्पन की,
थप्पन उथप्पन की वानि छत्रसाल की।
जंग जीतिलेवा तेऊ ह्वैके दामदेवा भूप
सेवा लागे करन महोवा महिपाल की। ४।

('छत्रसाल दशक' से)

अभ्यास और विमर्श

१. व्याख्या कीजिये तथा अलंकार एवं काव्य-सौष्ठव वताइये—शिवा-शौर्य—छंद १, ५। छत्रसाल-छटा—छंद १, ४। शिवा-शौर्य के छठे छंद के अंतिम चरण में जसवंतसिंह को गीदड़ कहने में क्या औचित्य है ? इस छंद के आधार पर शिवाजी के शौर्य का निरूपण कीजिये।

२. शिवा-शौर्य के तीसरे तथा छठे एवं छत्रसाल-छटा के तीसरे छंद में जिन ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख है उनका वर्णन करते हुए क्रमशः शिवाजी और छत्रसाल की जो विशेषता उल्लिखित है उसे स्पष्ट कीजिये।

३. अलंकार बतलाइये और यह दिखलाइये कि उसके द्वारा कवि ने केवल चमत्कार नहीं प्रदर्शित किया किन्तु वर्ण्य विषय का उत्कर्ष सिद्ध किया है—शिवा-शौर्य छन्द १, ३ और ५ और छत्रसाल-छटा छंद १, ३ और ४।

४. इन उद्धरणों में कौन-कौन से अलंकार कहाँ पर प्रयुक्त हुए हैं? उन्हें स्पष्ट कीजिये।

५. इन उद्धरणों में आये छंदों के नाम और लक्षण लिखिये।

६. शिवाजी तथा छत्रसाल के शत्रु के ऊपर छाये आतंक का निरूपण कीजिये।

७. भूषण के वीररस के चित्रण के सम्बन्ध में उपयुक्त उदाहरणों की सहायता से पुष्ट आलोचनात्मक विवेचन कीजिये।

८. भूषण सामान्य प्रशस्तिकार थे अथवा राष्ट्रीय चेतना के गायक कवि? युक्तियुक्त विचार कीजिये।

अयोध्यासिंह उपाध्याय

राधा

विमुग्धकारी मधु मंजु मास था, वसुन्धरा थी कमनीयतामयी।
विचित्रता साथ विराजिता रही, वसंत वासंतिकता वनान्त में।

नवीनभूता वन की विभूति में, विनोदिता-बेलि विहंग-वृन्द में।
अनूपता व्यापित थी वसन्त की, निकुंज में कूजित कुंज-पुंज में।

प्रफुल्लिता कोमल-पल्लवान्विता, मनोज्ञता-मूर्ति नितांत-रञ्जिता।
वनस्थली थी मकरन्द-मोदिता, अकीलिता कोकिल-काकली-मयी।

निसर्ग ने, सौरभ ने, पराग ने, प्रदान की थी अति कांत भाव से।
वसुन्धरा को, पिक को, मिलिन्द को, मनोज्ञता, मादकता, मदांधता।

वसन्त की भाव-भरी विभूति सी, मनोज की मंजुल पीठिका-समा।
लसी कहीं थी सरसा सरोजिनी, कुमोदिनी मानस-मोदिनी कहीं।

नवांकुरों में, कलिका-कलाप में, नितांत न्यारे फल-पत्र-पुंज में।
निसर्ग द्वारा सुप्रसूत पुष्प में, प्रभूत पुंजीकृत थी प्रफुल्लता।

दिशा प्रसन्ना, महि पुष्प-संकुला, नवीनता-पूरित पादपावली।
वसन्त में थी लतिका सुयौवना, अलापिका पंचम-तान कोकिला।

वसन्त-शोभा प्रतिकूल थी बड़ी, वियोग-मग्ना व्रजभूमि के लिए।
बना रही थी उसको व्यथामयी, विकास पाती वन-पादपावली।

प्रसून की मोहकता मनोज्ञता, नितांत थी अन्यमनस्कतामयी,
न वांछिता थी, न विनोदनीय थी, अमानिता हो मलयानिल-क्रिया।

बड़े यशस्वी वृषभानु-गेह के समीप थी एक विचित्र वाटिका।
प्रबुद्ध ऊधो इसमें इन्हीं दिनों प्रबोध देने व्रज-देवि को गये।

वसंत को पा यह शांत वाटिका स्वभावतः कान्त नितान्त थी हुई।
परन्तु होती उसमें सशान्ति थी विकास की कौशल-कारिणी-क्रिया।

इसी तपोभूमि-समान वाटिका सुअंक में सुन्दर एक कुंज थी,
समावृता श्यामल-पुष्प-संकुला अनेकशः बेलि-लता समूह से।

विराजती थीं वृषभानु-नन्दिनी, इसी बड़े नीरव शांत कुञ्ज में।
अतः यहीं श्रीबलवीर-बन्धु ने, उन्हें विलोका अलि-वृन्द-आवृता।

प्रशान्त म्लाना वृषभानु-कन्यका, सुमूर्ति देवी सम दिव्यतामयी,
विलोक हो भावित भक्ति-भाव से, विचित्र ऊधो-उर की दशा हुई।

सप्रीति वे आदर के लिए उठीं, विलोक आया व्रज-देव-बन्धु को।
पुनः उन्होंने निज शांत कुंज में, उन्हें बिठाया अति भक्ति-भाव से।

अतीव सम्मान समेत आदि में व्रजेश्वरी की कुशलादि पूछ के,
पुनः सुधी ऊधव ने सनम्रता कहा सँदेशा यह श्याम-मूर्ति का—

"प्राणाधारे परम-सरले, प्रेम की मूर्ति राधे,
निर्माता ने पृथक् तुमसे यों किया क्यों मुझे है?
प्यारी आशा प्रिय-मिलन की नित्य है दूर होती,
कैसे ऐसे कठिन पथ का पान्थ मैं हो रहा हूँ!

उत्कंठा से विवश नभ को, भूमि को, पादपों को,
ताराओं को, मनुज मुख को, प्रायशः देखता हूँ;
प्यारी, ऐसी न ध्वनि मुझको है कहीं भी सुनाती,
जो चिंता से चलित चित की शान्ति का हेतु होवे !"

अतीव हो अन्यमना विषादिता, विमोचते वारि दृगारविन्द से।
समस्त सन्देश सुना व्रजेश का, व्रजेश्वरी ने उर वज्र-सा बना।

पुनः उन्होंने अति शान्त भाव से, कभी वहा अश्रु कभी सधीरता।
कहीं स्व-बातें बलवीर-बन्धु से, दिखा कलत्रोचित चित्त-उच्चता—

"मैं हूँ ऊधो, पुलकित हुई आप को आज पा के,
सन्देशों को श्रवण करके और भी मोदिता हूँ।
मन्दीभूता उर-तिमिर की ध्वंसिनी ज्ञान आभा,
उद्दीप्ता हो उचित गति से उज्ज्वला हो रही है।

मेरे प्यारे पुरुष पृथिवी-रत्न औ' शान्त-धी हैं,
सन्देशों में तदपि उनकी वेदना व्यंजिता है।
मैं नारी हूँ, तरल-उर हूँ, प्यार से वंचिता हूँ,
जो होती हूँ विकल, विमना, व्यस्त, वैचित्र्य क्या है !

जो आसक्ता व्रज-अवनि में बालिकाएँ कई हैं,
वे सारी ही प्रणय-रँग से श्याम के रञ्जिता हैं।
मैं मानूँगी अधिक उनमें हैं महा-मोह-मग्ना,
तो भी प्रायः प्रणय-पथ की पंथिनी ही सभी हैं।

मेरी भी है कुछ गति यही श्याम को भूल दूँ क्यों ?
काढ़ूँ कैसे हृदय-तल से श्यामली मूर्ति न्यारी ?
जीते जी जो न मन सकता भूल है मंजु तानें,
तो क्यों होंगी शमित प्रिय के लाभ की लालसाएँ।

ये आँखें हैं जिधर फिरतीं चाहती श्याम को हैं,
कानों को भी मधुर रव की आज भी लौ लगी है।
कोई मेरे हृदय-तल को पैठ के जो विलोके,
तो पावेगा लसित उसमें कान्ति प्यारी उन्हीं की।

मेरी बातें श्रवण करके आप उद्विग्न होंगे,
जानेंगे मैं विवश बन के हूँ महा-मोह मग्ना।
सच्ची यों है न निज सुख के हेतु मैं मोहिता हूँ।
संरक्षा में प्रणय-पथ के भावतः हूँ सयत्ना।

प्यारे आवें सुवयन कहें, प्यार से गोद लेवें,
ठंढे होवें नयन, दुख हों दूर, मैं मोद पाऊँ।
ये भी हैं भाव मम उर के, और ये भाव भी हैं—
प्यारे जीवें, जग-हित करें, गेह चाहे न आवें।

हो जाने से हृदय-तल का भाव ऐसा निराला,
मैंने न्यारे परम गरिमावान दो लाभ पाये—
मेरे जी में हृदय-विजयी विश्व का प्रेम जागा;
मैंने देखा परम प्रभु को स्वीय प्राणेश ही में।

कह चुकी प्रिय-साधन ईश का, कुँवर का प्रिय-साधन है यही।
इसलिए प्रिय की परमेश की, परम पावन भक्ति अभिन्न है।
यह हुआ मणि-काञ्चन योग है, मिलन है यह स्वर्ण-सुगन्ध का।
यह सुयोग मिले वहु पुण्य से, अवनि में अति भाग्यवती हुई।

जाके मेरी विनय इतनी नम्रता से सुनावें।
मेरे प्यारे कुँवर-वर को आप सौजन्य द्वारा—
मैं ऐसी हूँ न निज दुख से कष्टिता शोक-मग्ना,
हा! जैसी हूँ व्यथित व्रज के वासियों के दुखों से।

गोपी-गोपों विकल व्रज की वालिका-बालकों को,
आ के पुष्पानुपम मुखड़ा प्राण-प्यारे दिखावें।
वाधा कोई न यदि प्रिय के चारु कर्त्तव्य में हो,
तो वे आ के जनक-जनकी की दशा देख जावें।

सत्कर्मी हैं, परम शुचि हैं, आप ऊधो, सुधी हैं,
अच्छा होगा सनय प्रभु से आप चाहें यही जो।
आज्ञा भूलूँ न प्रियतम की विश्व के काम आऊँ,
मेरा कौमार-व्रत भव में पूर्णता प्राप्त होवे।"

चुप हुई इतना कह मुग्ध हो, व्रज-विभूति-विभूषण राधिका।
चरण की रज ले हरिवन्धु भी, परम शान्ति समेत विदा हुए।

अभ्यास और विमर्श

१. काव्य-सौष्ठव प्रदर्शित करते हुए व्याख्या कीजिये—प्राणाधारे... होवे। ये आँखें...उन्हीं को। गोपी-गोपों...प्राप्त होवे।

२. अलंकार निर्देश कीजिये—निसर्ग ने......मदान्धता। मंदीभूता ......उज्ज्वला हो रही है। कह चुकी...यही।

३. कवि ने इस अवतरण में प्रकृति का उपयोग किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए किया है ? उसमें वह कैसे सफल हुआ है ?

४. उद्धव से राधा ने अपना जो प्रेम-सम्बन्धी आदर्श निरूपित किया है उसका उल्लेख करके बतलाइये कि उसमें प्रेम और आदर्श के परस्पर निर्वाह की अभिव्यञ्जना किस प्रकार हुई है ?

५. कवि ने वसंत की सुषमा का जो वर्णन किया है उसकी विशेषताओं का उद्घाटन कीजिये।

६. हरिऔध की रचना-शैली की विशेषताएँ सप्रमाण बतलाइये।

७. "सूर और हरिऔध के द्वारा उद्धव से क्रमशः गोपियों एवं राधा के वार्तालाप के वर्णन में उनके युग के विचारों की छाप है।" इसका युक्तियुक्त विवेचन कीजिये।



जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

गोपी-प्रेम

विरह विथा की कथा अकथ अथाह महा
कहत बनै न जो प्रवीन सुकवीनि सौं।
कहै 'रतनाकर' बुझावन लगे ज्यौं कान्ह
ऊधौ कौं कहन-हेत ब्रज-जुवतीनि सौं।
गहवरि आयौ गरौ भमरि अचानक त्यौं
प्रेम पर्‍यो चपल चुचाइ पुतरीनि सौं।
नैंकु कही बैननि, अनेक कही नैननि सौं,
रही-सही सोऊ कहि दीनि हिचकीनि सौं ॥१॥

नन्द औ जसोमति के प्रेम-पगे पालन की,
लाड़-भरे लालन की लालच लगावती।
कहै 'रतनाकर' सुधाकर-प्रभा सौं मढ़ी,
मंजु मृगनैननि के गुन-गन गावती।
जमुना कछारनि की रंग-रस-रारनि की,
बिपिन-विहारनि की हौंस हुमसावती।
सुधि ब्रज-बासिनि दिवैया सुख-रासिनि की
ऊधो नित हमकौ बुलावन कौं आवती ॥२॥

प्रेम-नेम निफल निवारि उर अंतर तैं
ब्रह्म-ज्ञान आनँद-निधान भरि लैहैं हम।

कहै 'रतनाकर' सुधाकर - मुखीनि ध्यान
आँसुनि सौं धोइ जोति जोइ जरि लैहैं हम।
आओ एक बार धारि गोकुल-गली की धूरि
तब इहिं नीति की प्रतीति धरि लैहैं हम।
मन सौं, करेजे सौं, स्रवन-सिर-आँखनि सौं
ऊधव तिहारी सीख भीख करि लैहैं हम ॥३॥

लै कै उपदेस और सँदेस-पन ऊधौ चले
सुजसु-कमाइबैं उछाह-उद्गार मैं।
कहै 'रतनाकर' निहारि कान्ह कातर पै
आतुर भये यौं रह्यौ मन न सँभार मैं।
ज्ञान-गठरी की गाँठि छरकी न जान्यौ कब
हरैं हरैं पूँजी सब सरकी कछार मैं।
डार मैं तमालनि की कछु बिरमानी अरु
कछु अरुझानी है करीरनि के झार मैं ॥४॥

हरैं-हरैं ज्ञान के गुमान घटि जान लगे
जोग के बिधान ध्यान हूँ तैं टरिबै लगे।
नैननि में नीर रोम सकल सरीर छयौ
प्रेम-अद्भुत-सुख सूझि परिबै लगे।
गोकुल के गाँव की गली मैं पग पारत हीं
भूमि कैं प्रभाव भाव औरै भरिबै लगे।
ज्ञान-मारतंड के सुखाये मनु मानस कौं
सरस सुहाये घनस्याम करिबै लगे ॥५॥

भेजे मनभावन के ऊधव के आवन की
सुधि ब्रज-गाँवनि मैं पावन जबै लगीं।
कहै 'रतनाकर' गुवालिनी की झौरि झौरि
दौरि दौरि नंद-पौरि आवन तबै लगीं।
उझकि उझकि पदकंजनि के पंजनि पै
पेखि पेखि पाती छाती छोहनि छ्वै लगीं।
हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा
हमकौं लिख्यौ है कहा कहन सबै लगीं ॥६॥

पंच तत्त्व मैं जो सच्चिदानंद की सत्ता सो तौ
हम तुम उनमैं समान ही समोई है।
कहै 'रतनाकर' बिभूति पंच-भूत हू की
एक ही सी सकल प्रभूतनि मैं पोई है।
माया के प्रपंच ही सौं भासत प्रभेद सबै
काँच-फलकनि ज्यौं अनेक एक सोई है।
देखौ भ्रम-पटल उघारि ज्ञान-आँखिनि सौं
कान्ह सब ही मैं कान्ह ही मैं सब कोई है ॥७॥

सुनि सुनि ऊधव की अकह कहानी कान
कोऊ थहरानी, कोऊ थानहिं थिरानी हैं।
कहै 'रतनाकर' रिसानी, बररानी कोऊ,
कोऊ बिलखानी, बिकलानी, बिथकानी हैं।
कोऊ सेद-सानी, कोऊ भरि दृग-पानी रहीं,
कोऊ घूमि घूमि परीं भूमि मुरझानी हैं।

कोऊ स्याम स्याम कै बहकि बिललानी कोऊ,
कोमल करेजौ थामि सहमि सुखानी हैं ॥८॥

कान्ह-दूत कैधौं ब्रह्म-दूत ह्वै पधारे आप,
धारे प्रन फेरन कौ मति ब्रजवारी की।
कहै 'रतनाकार' पै प्रीति-रीति जानत ना,
ठानत अनीति आनि नीति लै अनारी की।
मान्यौ हम, कान्ह ब्रह्म एकही, कह्यौ जो तुम
तौहूँ हमें भावति न भावना अन्यारी की।
जैहै बनि-बिगरि न बारिधिता बारिधि की,
बूँदता बिलैहै बूँद बिबस बिचारी की ॥९॥

कर-बिनु कैसैं गाय दुहिहै हमारी वह,
पद-बिनु कैसैं नाचि थिरकि रिझाइहै!
कहै 'रतनाकर' बदन-बिनु कैसैं चाखि
माखन, बजाइ बेनु गोधन गवाइहै!
देखि सुनि कैसैं दृग स्रवनि बिनाहीं हाय!
भोरे ब्रजबासिनि की बिपति बराइहै!
रावरौ अनूप कोऊ अलख अरूप ब्रह्म,
ऊधौ कहौ कौन धौं हमारैं काम आइहै ॥१०॥

ढोंग जात्यौ ढरकि परकि उर सोग जात्यौ
जोग जात्यौ सरकि स-कंप कँखियानि तैं।
कहै 'रतनाकर' न खेलते प्रपंच ऐंठि
बैठि धरा लेखते कहूँधौं नखियानि तैं।

रहते अदेख नाहिं बेष वह देखत हूँ
देखत हमारी जान मोर पँखियानि तैं।
ऊधौ ब्रह्म-ज्ञान कौ वखान करते ना नैंकु
देख लेते कान्ह जौ हमारी अँखियानि तें ॥११॥

आतुर न होहु ऊधौ आवति दिवारी अबै,
बैसिये पुरंदर-कृपा जौ लहि जाइगी।
होत नर ब्रह्म ब्रह्म-ज्ञान सौं बतावत जो,
कछु इहिं नीति की प्रतीति गहि जाइगी।
गिरवरधारि जौ उबारि ब्रज लीन्यौ बलि,
तौ तौ भाँति काहू वह बात रहि जाइगी।
नातरु हमारी भारी बिरह-बलाय-संग,
सारी ब्रह्म-ज्ञानता तिहारी बहि जाइगी ॥१२॥

ऊधौ यहै सूधौ सौ सँदेसो कहि दीजौ एक
जानति अनेक ना बिवेक ब्रज-बारी हैं।
कहै 'रतनाकर' असीम रावरी तौ छमा
छमता कहाँ लौं अपराध की हमारी हैं।
दीजै और ताजन सबै जो मन भावै पर
कीजै ना दरस-रस-बंचित बिचारी हैं।
भली हैं बुरी हैं औ सलज्ज निरलज्ज हू हैं
जो कहौ सो हैं पै परिचारिका तिहारी हैं ॥१३॥

प्रेम-मद-छाके पग परत कहाँ के कहाँ
थाके अंग नैननि सिथिलता सुहाई है।

कहै 'रत्नाकर' यौं आवत चकात ऊधौ
मानौ सुधियात कोऊ भावना भुलाई है।
धारत धरा पै ना उदार अति आदर सौं
सारत वहोलिनि जो आँस-अधिकाई है।
एक एक राजै नवनीत जसुदा कौ दियौ
एक कर बंसी वर राधिका-पठाई है ॥१४॥

लैकै पन सूछम अमोल जो पठायौ आप,
ताकौ मोल तनक तुल्यौ न तहाँ साँठी तैं।
कहै 'रतनाकर' पुकारे ठौर ठौर पर,
पौरि बृषभानु की हिरान्यौ मति नाठी तैं।
लीजै हेरि आपुहीं न हेरि हम पायौ फेरि,
याही फेर माहिं भये माठी दधि आँठी तैं।
ल्याये धूरि पूरि अंग अंगनि तहाँ की जहाँ
ज्ञान गयौ सहित गुमान गिरि गाँठी तैं ॥१५॥

जैहै व्यथा बिषम बिलाई तुम्हैं देखत हीं,
तातैं कही मेरी कहूँ झूठि ठहरावौ ना।
कहै 'रतनाकर' न याही भय भाषैं भूरि,
याही कहैं जावौ बस बिलँव लगावौ ना।
एतौ और करत निवेदन स-वेदन हैं,
ताकौ कछु बिलग उदार उर ल्यावौ ना।
तब हम जानैं तुम धीरज-धुरीन जब
एक बार ऊधौ बनि जाइ पुनि जावौ ना ॥१६॥

अभ्यास और विमर्श

१. श्रीकृष्ण जिस समय उद्धव से सन्देश कहने लगे उस समय उनकी क्या दशा हुई थी ? क्यों ? इस वर्णन की मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जो विशेषता है उसका उल्लेख कीजिये।

२. श्रीकृष्ण ने उद्धव को गोपियों के पास किस किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भेजा था ? वह कैसे सिद्ध हुई ?

३. उद्धव के प्रति गोपियों ने अपनी अनन्यता किस प्रकार प्रकट की थी ?

४. अभिप्राय स्पष्ट कीजिये—ज्ञान मारतंड······लगे (५)। पंचतत्त्व···सब कोई है (७)। जैहै बनि-बिगरि···बिचारी की (६)। लैकै पन सूछम···गाँठी तैं (१५)।

५. गोपियों ने उद्धव के द्वारा श्रीकृष्ण के पास कौन कौन से उपहार भेजे थे ? उनके द्वारा वे क्या व्यक्त करना चाहती थीं ?

६. सोलहवें छंद में उद्धव ने श्रीकृष्ण से क्या कहा है ? उसकी व्यञ्जना को स्पष्ट कीजिये।

७. उद्धव और गोपी-संवाद की विशेषताओं का उद्‌घाटन कीजिये।

८. रत्नाकर की कविता के भाव एवं शैली सम्बन्धी सौंदर्य का आलोचनात्मक परिचय दीजिये।

———

मैथिलीशरण गुप्त

दिवोदास

[दिवोदास की कथावस्तु पुराण से ली गई है। प्राचीन काल में यहाँ के एक राजर्षि ने स्वयं देवों के विरुद्ध अपने पुरुषार्थ की पताका फहरायी थी। इतना ही नहीं, उसने अपने राज्य से उनका बहिष्कार भी कर दिया। इससे भी अधिक विस्मय की बात यह है कि हमारे देवप्राण पुराणकार ने ही उसका जय-जय-कार किया!]

[गंगा-तीर पर रिपुंजय का छोटा सा आश्रम]

रिपुंजय—(समाधि से उठकर)

नहीं मन्त्रद्रष्टा मैं, फिर भी करते हैं सब शोध,
हुआ मुझे अपनी समाधि में असंदिग्ध यह बोध—
निज मर्यादा-पुरुषोत्तम ही मानव का आदर्श,
नहीं और कोई कर पाता मेरा हृदय-स्पर्श।
पर जब तक मैं तपोमग्न था हुआ यहाँ क्या क्लेश ?
रूखा रूखा, सूखा सूखा, भूखा भूखा देश!
चारों ओर धूल उड़ती है, सब कुछ अस्त-व्यस्त,
एक अकाल-कुसुम-सा मेरा आश्रम ही विन्यस्त।
संभवतः तप के प्रभाव से यह बच रहा, परन्तु
लौट गये होंगे ललचा कर कितने ही जन-जन्तु।
इधर मुझे स्वर्गाधिकार भी सुलभ आज निज हेतु
फहराया है मैंने अपना पुरुष-कीर्ति का केतु।

पर अपनों के लिए किया क्या, यह है एक विचार,
क्या पाया मेरी धरती ने धर कर मेरा भार?

(ब्रह्मा का आविर्भाव)

ब्रह्मा—हुआ तुम्हारे तप के बल से पुरुष-पुण्य परिपुष्ट,
वत्स, चाहते हो क्या, बोलो, मैं हूँ तुमसे तुष्ट।

रिपुंजय—(प्रणाम करके)
मनुष्यत्व को छोड़ और क्या चाहूँ मैं मनुजात?
तप में नहीं आत्मचिंतन में रत अवश्य दिन रात।
स्वार्थ—

ब्रह्मा— धन्य यह स्वार्थ तुम्हारा और स्वयं तुम धन्य,
मेरी कृति में मनुष्यत्व से श्रेष्ठ नहीं कुछ अन्य।
किंतु रिपुंजय, सुनूँ तुम्हारे रिपु की कोई बात।
रिपुंजय—वह भी मुझमें ही अदृश्य है और कहूँ क्या बात?

ब्रह्मा—खोज धरा उसको भी तुमने हुआ मुझे यह ज्ञात,
दिव भी जिसका दास, वही तुम दिवोदास विख्यात।
सफल करो निज मनुष्यत्व अब, साधो अपना लक्ष्य।
लो, अकाल-पीड़ित समस्त ही काशिराज्य यह रक्ष्य।

दिवोदास—शिरोधार्य आदेश आपका किन्तु—

ब्रह्मा— किन्तु क्या, वीर?
अन्त तरंगाघातों का कब तर्क-सिंधु के तीर?
तुम्हें द्विधा क्या है?—

दिवोदास— प्रस्तुत मैं, किन्तु नियम है एक—
माने इसे भले ही कोई मेरा अति अविवेक।
चला जाय मेरी धरती से सारा सुर-समुदाय।

ब्रह्मा— वत्स,वत्स, विस्मित मैं सुन कर, क्या कहते हो हाय !

दिवोदास—कहता हूँ मैं वही आपसे जो भीतर का भाव।
क्षमा कीजिये मुझे, उचित यदि जँचे न यह प्रस्ताव !

ब्रह्मा— सुरगण धरती से हट जावें और असुर-समुदाय ?

दिवोदास—स्वयं हटा दूँगा मैं उसको करके योग्य उपाय।

ब्रह्मा— तो स्वीकार करूँ मैं पहले यह निष्कासन-शाप ?

दिवोदास—नहीं, नहीं, यह नहीं, हमारे पूज्य पितामह आप।

ब्रह्मा— वरुण-वायु-वैश्वानर भी क्या जावें भूतल त्याग ?

दिवोदास—देवमात्र घर बैठें भोगें निज मख-भाग-पराग।
किंतु पञ्च तत्त्वों का हमको है जितना अधिकार,
करे न कोई कभी कहीं भी उनमें विघ्न-विकार।

ब्रह्मा— पर देवों पर हुई तुम्हें क्यों ऐसी विषम विरक्ति !

दिवोदास—नहीं, नहीं, उनपर है मेरी समुचित श्रद्धा-भक्ति।
पर सबकी अपनी सीमा है—

ब्रह्मा— सुर तो सुकृति-सहाय।

दिवोदास—सिद्ध इसीसे तो मनुष्य हैं अकृति, अगति, अनुपाय।
नहीं मानता इसे किसी विध मेरा नर-पुरुषार्थ,
सब मेरे ही अर्थ अंत में जितने प्राप्य पदार्थ,

करें सदा सानन्द स्वर्ग में सुर निर्विघ्न विहार,
हम पृथ्वी के पुत्र, हमीं पर निज भू माँ का भार।
कर दी है देवावलंब ने नर की निजता नष्ट,
अमृतपुत्र हो कर भी हम हैं पौरुष-पद से भ्रष्ट,
किन्तु आत्मविश्वासी हूँ मैं पा कर दुर्लभ देह,
सहे सुरों का भी शासन क्यों मेरा अपना गेह?
फिर भी नहीं किया जा सकता विग्रह देव-विरुद्ध
अपदेवों से हम अवश्य ही कर सकते हैं युद्ध।

ब्रह्मा— अपनी पूज्य-भावना कैसे छोड़ सकेंगे लोग?
फैलेगा तब क्या न जनों में जन-पूजा का रोग?

दिवो०— भय क्या यदि निज माध्यम से ही समझें नर निज सत्त्व?
जो अनुकरणातीत आज है बन कर देव महत्त्व।
तर्क जानता नहीं तात, मैं रखता हूँ विश्वास,
उसे छोड़ कर सम्भव है क्या कोई नया प्रयास?

ब्रह्मा— यह अपूर्व आयास तुम्हारा, ध्रुव नवीन उत्साह,
अच्छी बात, प्रयोग करो तुम, पूरो अपनी चाह।

(काशी के मंत्री, पुरोहित और पुरजन का प्रवेश)

आगन्तुक—रक्षा करिये, रक्षा करिये, देश आज उच्छिन्न,
हे राजर्षि अन्य कोई गति नहीं आपसे भिन्न।

दिवो०— स्वागत सुजन, हुआ क्या यह सब?

मंत्री— अति दारुण दुष्काल।

दिवो०—यत्न ?

मंत्री— यत्न क्या जब देवों की हुई कुदृष्टि कराल ?

दिवो०—कारण ?

मंत्री— कारण और कहूँ क्या, स्वयं हमारे पाप।

दिवो०—नहीं पापियों की स्वीकृति यह।

मंत्री— पुण्यात्मा हैं आप।

दिवो०—मैं क्या करूँ ?

मंत्री— आप राजा हों तो न रुकेगी वृष्टि।

दिवो०—पर बहती गङ्गा पर भी क्या गई तुम्हारी दृष्टि ?

मंत्री— आशुतोष शङ्कर भी मानो गये हमें अब छोड़,
त्यागा नहीं त्रिपथगा ने ही अपना हृदय हिलोड़।
पीड़ित पुर-शिशु को, चिन्ता से कृश हैं जिनके अंग,
ये ससेट-सी रहीं अंक में भर कर आह-तरङ्ग।
करती हैं हे देव, यही तो यहाँ तृषा की शांति।

दिवो०—यही क्षुधा भी शांत करेंगी और हरेंगी श्रांति।
ऊपर शून्य तको क्यों, नीचे भरे सिन्धु गम्भीर।
करो सींचने के उपाय ही, अक्षय है निज नीर।
सुजला अब भो भूमि हमारी, चलो करें उद्योग
सुफला इसे बना लें मिल कर समभोगी हम लोग।
श्लाघनीय यह आवश्यकता जिसमें आविष्कार,
नहीं चतुष्पद, गये द्विपद ही बाधाओं के पार।

नहीं चाहिये हमें किसी भी देवासुर का भाग
किन्तु आत्म-संग्रह पहले है, पीछे कोई त्याग।
करके निज कर्त्तव्य स्वयं हम मानेंगे संतोष
फल अपने हैं, किंतु अफल में नहीं हमारा दोष।
रहे सदा सबके समक्ष यह मेरा लक्षक-लेख—
हम न भव्यता भी खो बैठें दूर दिव्य कुछ देख।
रचा हमीं ने वाहर-भीतर यह इतना संसार,
कितना चित्र-विचित्र हमारा एक पृथुल परिवार!
नर हो कर हम क्यों निराश हों, ये कर नहीं अशक्त,
राजवंश भी रहे प्रजा के साथ सदा समभक्त।

सब लोग—

मान्य हमारे महाराज के उड़ें पुण्य जय-केतु।
इष्ट नहीं कुछ अधिक प्रजा से जिन्हें स्वयं निज हेतु।

(समवेत गीत)

हम मनुष्य होकर क्या चाहें?
देवों से भी अधिक क्यों न यह अपना भाग्य सराहें?
निज सुयोग पर गर्व जनावें,
इस जीवन को पर्व बनावें,
वसुधा पर विचरें, अंबर में उड़ें, अब्धि अवगाहें!
हम मनुष्य होकर क्या चाहें?
किसके स्थूल-सूक्ष्म ये सारे?
वह ईश्वर भी हेतु हमारे!

विस्तृत तन-मन का विकास है, फिर क्यों ठंडी आहें ?
हम मनुष्य हो कर क्या चाहें ?
रहे हृदय की शुद्धि हमारी
सखी-संगिनी बुद्धि हमारी
भीति छोड़ कर प्रीति-रीति रख, आओ, नीति निवाहें।
हम मनुष्य हो कर क्या चाहें ?

अभ्यास और विमर्श

१. रिपुंजय को समाधि में क्या बोध हुआ था ? उसके फलस्वरूप उसने ब्रह्मा से क्या वरदान माँगा ? क्यों ?

२. दिवोदास ने राजा के लिए कौन-सा आदर्श स्थिर किया है ?

३. अभिप्राय बतलाइये—एक अकाल……विन्यस्त। कर दी है……भ्रष्ट। सुजला……हम लोग।

४. हम मनुष्य हो कर क्या चाहें ? इस गीत का आशय स्पष्ट कीजिये।

५. इस कथानक में प्राचीन घटना के साथ ही कवि ने आधुनिक युग के अनुरूप जो विचार प्रदर्शित किये हैं उन्हें बतलाइये और यह भी कि ऐसा करने में क्या औचित्य है।

६. "मैथिलीशरण गुप्त पुराने आख्यानों को नवीन युग के अनुरूप चित्रित करने में प्रवीण हैं।" इसको स्पष्ट कीजिये।

———

जयशंकर 'प्रसाद'

श्रद्धा

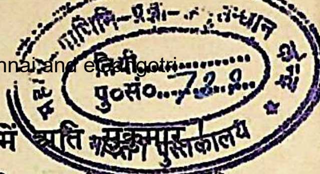
"कौन तुम संसृति-जलनिधि तीर तरंगों से फेंकी मणि एक,
कर रहे निर्जन का चुपचाप प्रभा की धारा से अभिषेक ?
मधुर विश्रांत और एकान्त—जगत का सुलझा हुआ रहस्य,
एक करुणामय सुन्दर मौन और चंचल मन का आलस्य !"

सुना यह मनु ने मधु गुंजार मधुकरी का सा जब सानंद,
किये मुख नीचा कमल समान प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छंद;
एक झटका सा लगा सहर्ष, निरखने लगे लुटे से, कौन—
गा रहा यह सुन्दर संगीत ? कुतूहल रह न सका फिर मौन।

और देखा वह सुन्दर दृश्य नयन का इंद्रजाल अभिराम;
कुसुम-वैभव में लता समान चन्द्रिका से लिपटा घनश्याम।
हृदय की अनुकृति बाह्य उदार एक लंबी काया, उन्मुख;
मधु पवन क्रीडित ज्यों शिशु साल सुशोभित हो सौरभ संयुक्त।

मसृण गांधार देश के, नील रोम वाले मेषों के चर्म,
ढक रहे थे उसका वपु कांत बन रहा था वह कोमल वर्म।
घिर रहे थे घुँघराले बाल अंस अवलंबित मुख के पास;
नील घन-शावक से सुकुमार सुधा भरने को विधु के पास।

कहा मनु ने, "नभ धरणी बीच बना जीवन रहस्य निरुपाय;
एक उल्का सा जलता भ्रांत, शून्य में फिरता हूँ असहाय।



कौन हो तुम वसन्त के दूत विरस पतझड़ में अति सुकुमार !
घन तिमिर में चपला की रेख, तपन में शीतल मंद बयार !"
लगा कहने आगन्तुक व्यक्ति मिटाता उत्कण्ठा सविशेष,
दे रहा हो कोकिल सानंद सुमन को ज्यों मधुमय सन्देश—
"भरा था मन में नव उत्साह सीख लूँ ललित कला का ज्ञान,
इधर रह गन्धर्वों के देश पिता की हूँ प्यारी सन्तान।

घूमने का मेरा अभ्यास, बढ़ा था मुक्त व्योम-तल नित्य;
कुतूहल खोज रहा था व्यस्त हृदय-सत्ता का सुन्दर सत्य।
मधुरिमा में अपनी ही मौन, एक सोया सन्देश महान,
सजग हो करता था संकेत; चेतना मचल उठी अनजान।

बढ़ा मन और चले ये पैर, शैल मालाओं का शृंगार;
आँख की भूख मिटी यह देख आह कितना सुन्दर संभार।
यहाँ देखा कुछ बलि का अन्न, भूत-हित-रत किसका यह दान!
इधर कोई है अभी सजीव हुआ ऐसा मन में अनुमान।

तपस्वी! क्यों इतने हो क्लांत? वेदना का कैसा यह वेग?
आह! तुम कितने अधिक हताश बताओ यह कैसा उद्वेग!
हृदय में क्या है नहीं अधीर, लालसा जीवन की निश्शेष?
कर रहा वंचित कहीं न त्याग तुम्हें, मन में धर सुन्दर वेश!

जिसे तुम समझे हो अभिशाप, जगत की ज्वालाओं का मूल;
ईश का वह रहस्य वरदान कभी मत इसको जाओ भूल।"
लगे कहने मनु सहित विषाद—"मधुर मारुत से ये उच्छ्वास
अधिक उत्साह तरंग अबाध उठाते मानस में सविलास।

किन्तु जीवन कितना निरुपाय! लिया है देख; नहीं संदेह,
निराशा है जिसका परिणाम सफलता का वह कल्पित गेह।"
कहा आगन्तुक ने सस्नेह—"अरे तुम इतने हुए अधीर!
हार बैठे जीवन का दाँव, जीतते मर कर जिसको वीर।

तप नहीं केवल जीवन सत्य करुण यह क्षणिक दीन अवसाद;
तरल आकांक्षा से है भरा सो रहा आशा का आह्लाद।
एक तुम यह विस्तृत भूखंड प्रकृति वैभव से भरा अमंद;
कर्म का भोग, भोग का कर्म यही जड़ चेतन का आनन्द।

अकेले तुम कैसे असहाय यजन कर सकते? तुच्छ विचार!
तपस्वी! आकर्षण से हीन कर सके नहीं आत्म-विस्तार।
दब रहे हो अपने ही बोझ खोजते भी न कहीं अवलंब;
तुम्हारा सहचर बन कर क्या न उऋण होऊँ मैं बिना विलंब?

समर्पण लो सेवा का सार सजल संसृति का यह पतवार,
आज से यह जीवन उत्सर्ग इसी पद तल में विगत विकार।
बनो संसृति के मूल रहस्य तुम्हीं से फैलेगी वह बेल;
विश्व भर सौरभ से भर जाय सुमन के खेलो सुन्दर खेल।

और यह क्या तुम सुनते नहीं विधाता का मंगल वरदान—
'शक्ति-शाली हो, विजयी बनो' विश्व में गूँज रहा जय गान।
डरो मत अरे अमृत संतान अग्रसर है मंगलमय वृद्धि,
पूर्ण आकर्षण जीवन-केन्द्र खिंची आवेगी सकल समृद्धि।

विधाता की कल्याणी सृष्टि सफल हो इस भूतल पर पूर्ण;
पटें सागर, बिखरें ग्रह-पुंज और ज्वालामुखियाँ हों चूर्ण।

उन्हें चिनगारी सदृश सदर्प कुचलती रहे खड़ी सानन्द;
आज से मानवता की कीर्ति, अनिल भू जल में रहे न बंद।
जलधि के फूटें कितने उत्स, द्वीप कच्छप डूबे उतरायँ;
किन्तु वह खड़ी रहे दृढ़ मूर्ति, अभ्युदय का कर रही उपाय।
विश्व की दुर्बलता बल बने, पराजय का बढ़ता व्यापार
हँसाता रहे उसे सविलास शक्ति का क्रीड़ामय संचार।
शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय;
समन्वय उनका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय।"

('कामायनी' से)

गीत

(१)

ले चल वहाँ भुलावा दे कर, मेरे नाविक, धीरे धीरे
जिस निर्जन में सागर लहरी, अंबर के कानों में गहरी—
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो, तज कोलाहल की अवनी रे!
जहाँ साँझ-सी जीवन-छाया, ढीले अपनी कोमल काया,
नील नयन से ढुलकाती हो, ताराओं की पाँति घनी रे!
जिस गंभीर मधुर छाया में, विश्व चित्र-पट चल माया में—
विभुता विभु-सी पड़े दिखाई, दुख-सुख वाली सत्य बनी रे!
श्रम-विश्राम क्षितिज-बेला से, जहाँ सृजन करते मेला से—
अमर जागरण उषा नयन से, बिखराती हो ज्योति घनी रे!

(२)

बीती विभावरी जाग री!
अंबर पनघट में डुबो रही—तारा-घट ऊषा नागरी।

खग-कुल कुल-कुल सा बोल रहा, किसलय का अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लाई मधु-मुकुल नवल रस गागरी।
अधरों में राग अमंद पिये, अलकों में मलयज बन्द किये—
तू अब तक सोई है आली! आँखों में भरे विहाग री!

(३)

अब जागो जीवन के प्रभात!
वसुधा पर ओस बने बिखरे हिमकन आँसू जो क्षोभ भरे,
ऊषा बटोरती अरुण गात! अब जागो जीवन के प्रभात!
तम नयनों की तारायें सब—मुँद रहीं किरण दल में हैं अब,
चल रहा सुखद यह मलय वात! अब जागो जीवन के प्रभात!
रजनी की लाज समेटो तो, कलरव से उठ कर भेंटो तो,
अरुणांचल में चल रही बात! अब जागो जीवन के प्रभात!

('लहर' से)

अभ्यास और विमर्श

१. श्रद्धा और मनु के संवाद को अपने शब्दों में प्रकट कीजिये।
२. 'श्रद्धा' के अन्तर्गत इन अंशों की व्याख्या कीजिये—कौन तुम···आलस्य। मधुरिमा में—संभार।
१. 'बीती विभावरी'—गीत के काव्य-सौष्ठव का उद्घाटन कीजिये।
४. 'अब जागो जीवन के प्रभात'—गीत में आये अलङ्कारों का सौन्दर्य स्पष्ट कीजिये।
५. प्रसाद के कवित्व-सौष्ठव का आलोचनात्मक परिचय दीजिये।
६. प्रसाद की काव्य-शैली की विशेषताएँ बतलाइये। अपने निष्कर्षों के समर्थन के लिए उपयुक्त उद्धरणों से पुष्ट प्रमाण दीजिये।
७. श्रद्धा के सन्देश का मर्म समझाइये।

मैं आ गई

नाद की प्यालियों, मोद की ले सुरा गीत के तार-तारों उठी छा गई,
प्राण के बाग में प्रीति की पंखिनी बोल बोली सलोने कि मैं आ गई।

नेह के नाथ क्या नृत्य के रंग में भावना की रवानी लुटाने चले ?
साँस के पास आ, हास के देस छा, याद को भूलने में झुलाने चले ?

प्रेम की जन्म-गाँठों जगी मंगला राग वीणा प्रवीणा सखी भारती,
आज ब्रह्मांड की गोपिका गा उठी सूर्य की रश्मियों श्याम की आरती !

जो उँड़ेली कृपा झोलियाँ, प्यार के देश ने, आँसुओं में बहीं, आ गईं !
प्राण के बाग में प्रीति की पंखिनी, कूक उट्ठी सबेरे कि मैं आ गई।

('हिम-तरंगिनी' से)

बलि-पंथी से

मत व्यर्थ पुकारे शूल-शूल, कह फूल-फूल सह फूल-फूल।
हरि को ही-तल में बन्द किये, केहरि से कह नख हूल-हूल।
कागों का सुन कर्तव्य-राग, कोकिल-काकलि को भूल-भूल।
सुरपुर-ठुकरा, आराध्य कहे तो चल रौरव के कूल-कूल।
भूखंड बिछा, आकाश ओढ़, नयनोदक ले; मोदक प्रहार।
ब्रह्मांड हथेली पर उछाल, अपने जीवन-धन को निहार।

आँसू

आहा ! कैसे गिरे सीपियों से ये गरम-गरम मोती ?
जगमग हृदय किये देती है टपक-टपक जिनकी जोती।

क्यों रह-रह बह-बह देते हैं, क्या अपराध किया मैंने ?
क्या भीतर करुणाब्धि छिपा है, ये आ गये पता देने ?

क्या दूषित प्रतिबिम्ब पड़ गया, अतः स्वच्छतर होने को,
छूटे हैं अमृत के सोते, मृदुल पुतलियाँ धोने को ?

जिन नयनों से जीवन-धन देखा, उनसे आसानी से—
और न दीखे, अतः भर दिया, उन्हें हृदय के पानी से ?

अथवा कई मास का ग्रीषम रहा घनों को उमड़ाता—
उन्हें सुयोग-वायु आदर से दौड़ पड़ा द्रुत बरसाता ?

बलि होने में वज्र हृदय हो करते लिख खींचा-तानी ?
राष्ट्र-देवि, करने आई हो क्या मुझको पानी-पानी ?

भ्रम हो गया साधना साधी, देव बना, ऐसा अविवेक,
होने से, करने बैठी हो क्या यह तुम मेरा अभिषेक ?

मातृभूमि-हित के कष्टों का राज्य पुनः पाऊँ सविवेक,
सिंहासन मिलने के पहले, क्या यह करती हो अभिषेक ?

आती है स्वातन्त्र्य-देवता, उसके चरण धुलाने में,
सिखा रही हो, साथी होऊँ, अविरल अश्रु बहाने में !

स्नेह-सिंधु की नादों को सुन हृदय-हिमालय तज अपना,
व्याकुल हो कर दौड़ पड़ीं क्या ये दोनों गंगा जमना ?

हृदय-ज्वर व्याकुल करता था, मिलन-वटी से साधा काज,
उतरा ताप इसी से बहता, नयनों-द्वार पसीना आज,

"स्नेह दूध कब से रक्खा है, लूँ नवनीत चला कर चक्र",
इसे जमाने डाल रही हो, हृदय-भांड से प्यारा तक्र ?

कहती हो क्या, 'आर्य भूमि की श्री गोपाल लाज राखें'
तब तक दम मत लो जब तक हैं, मेरी अश्रु भरी आँखें ?
श्री स्वतन्त्रता की वेदी पर, प्राण-पुष्प हो कर निश्चल,
देख, चढ़ा, पूजा-हित लाई नयनों की गंगा का जल ?

मैं जाता हूँ, युद्ध-क्षेत्र में, अश्रु-बिन्दु से अतः निडर,
लिखती हो 'जीतो तो लौटो !' पृष्ठ पत्र पर ये अक्षर ?
गोल उपल को शिव-स्वरूप गिन, पूजन कर, हो रही सफल,
जीवन-घट की युगल बिंदुएँ, टपकाती हैं गंगा-जल ?

कच्ची मिट्टी का पुतला हूँ, दे दे नयनों की जल-धार,
पंक बनाती हो ? करती हो, क्या माँ का मन्दिर तैयार ?

अमर राष्ट्र

छोड़ चले, ले तेरी कुटिया, यह लुटिया-डोरी ले अपनी,
फिर वह पापड़ नहीं बेलने, फिर वह माला पड़े न जपनी।
यह जागृति तेरी तू ले ले, मुझको मेरा दे दे सपना,
तेरे शीतल सिंहासन से सुखकर सौ युग ज्वाला तपना।

सूली का पथ ही सीखा हूँ, सुविधा सदा बचाता आया,
मैं बलि-पथ का अंगारा हूँ, जीवन-ज्वाल जगाता आया।
एक फूँक, मेरा अभिमत है, फूँक चलूँ जिससे नभ जल थल,
मैं तो हूँ बलि-धारा-पन्थी, फेंक चुका कब का गंगाजल।

इस चढ़ाव पर चढ़ न सकोगे, इस उतार से जा न सकोगे,
तो तुम मरने का घर ढूँढो, जीवन-पथ अपना न सकोगे।

श्वेत केश ?—भाई होने को—हैं ये श्वेत पुतलियाँ बाकी ;
आया था इस घर एकाकी, जाने दो मुझको एकाकी ।

अपना कृपा-दान एकत्रित कर लो, उससे जी बहला लें ।
युग की होली माँग रही है, लाओ उसमें आग लगा दें ।
मत बोलो वे रस की बातें, रस उसका जिसकी तरुणाई ,
रस उसका जिसने सिर सौंपा, आगी लगा भभूत रमाई ।

जिस रस में कीड़े पड़ते हों, उस रस पर विष हँस-हँस डालो ,
आओ गले लगो, ऐ साजन ! रेतो तीर, कमान सँभालो ।
हाय, राष्ट्र-मन्दिर में जा कर तुमने पत्थर का प्रभु खोजा !
लगे माँगने जा कर रक्षा, और स्वर्ण रूपे का बोझा ?

मैं यह चला पत्थरों पर चढ़, मेरा दिलवर वहीं मिलेगा ।
फूँक जला दें सोना-चाँदी, तभी क्रान्ति का सुमन खिलेगा ।
चट्टानें चिंघाड़ें हँस-हँस, सागर गरजे मस्ताना सा ;
प्रलय राग अपना भी उसमें, गूँथ चलें ताना-बाना सा ।

बहुत हुई यह आँख-मिचौनी, तुम्हें मुबारक यह वैतरनी ,
मैं साँसों से डाँड़ उठा कर, पार चला, ले कर युग-तरनी ।
मेरी आँखें, मातृभूमि से नक्षत्रों तक, खींचें रेखा ,
मेरी पलक-पलक पर गिरता जग के उथल-पुथल का लेखा !

मैं पहला पत्थर मन्दिर का, अनजाना पथ जान रहा हूँ ,
गड़ूँ नींव में, अपने कन्धों पर मन्दिर अनुमान रहा हूँ ।
मरण और सपनों में होती है मेरे घर होड़ाहोड़ी ,
किसकी यह मरजी-नामरजी, किसकी यह कौड़ी दो कौड़ी ?

अमर राष्ट्र, उद्दण्ड राष्ट्र, उन्मुक्त राष्ट्र, यह मेरी बोली!
यह 'सुधार' 'समझौतों' वाली मुझको भाती नहीं ठठोली।
मैं न सहूँगा—मुकुट और सिंहासन ने वह मूछ मरोरी,
जाने दे, सिर ले कर मुझको, ले सँभाल यह लोटा-डोरी!

वीर-पूजा

पा प्यारा अमरत्व, अमर आनन्द अभय पा,
विश्व करे अभिमान, वीर्य-बल-पूर्ण, विजय पा;
जागृति जीवन-ज्योति ज़ोर से हो, तू दमके,
परम कार्य का रूप बने, वसुधा में चमके;
तू भुजा उठा दे हे जयी! जग चक्कर खाने लगे;
दुखियों के हिय शीतल बनें, जगतीतल हुलसाने लगे।

तेरे कन्धों चढ़े, जगत-जीवन की आशा,
तेरे बल पर बढ़े, जाति, जागृति, अभिलाषा,
कसी रहे कटि कर्म-महा-वारिधि तरने को,
गरुड़ छोड़, पद चलें, दुखी का दुख हरने को,
वह प्रेम-सूत्र में गुँथा रहा, दुखियों के मन का हार है।
वसुधा का बल संचार ही, श्रीचरणों का उपहार है।

आ, आहा! यह दिव्य देश-दर्शन दिखला, आ!
उलट-पलट के विकट कर्म-कौशल सिखला, आ!
'जय हो'—यह हुङ्कार हृदय दहलाने वाली!
काँप उठी उस वन-प्रदेश की डाली डाली!

ले, श्री मनुष्यता मत्त हो, विजयध्वनि आराधे खड़ी;
श्री प्रकृति-प्रेम पगली बनी, वीणा के स्वर साधे खड़ी।

आहा ! पन्द्रह कोटि हार ले, आये माली,
जगमग-जगमग हुईं कोटि पन्द्रह ये थाली,
अर्घ्य-दान के लिए हिमालय आगे आये,
रत्नाकर ये खड़े, धुलें श्री चरण सुहाये।
यह हरा-हरा भावों भरा कर्मस्थल स्वीकार हो;
नवजीवन का संचार हो, क्यों हो ? कृति हो, हुंकार हो।

('हिमकिरीटिनी' से)

विदा

लो निकाल कर फेंक दिया है मैंने गीतों को दरवाजे,
इन पाषाणों पर मणियों के मैंने कितने सहे तकाजे।
मैं तो शून्य सृजन करता हूँ, कैसे उनको अंक बताता,
इन पथ पड़े पत्थरों में पड़ कौन जौहरी धोखा खाता !

'ओसों' की इन लघु बूँदों की धारा कैसे बनती बोलो,
अपनी इन जीवित मौतों पर कौन जिन्दगी ढलती बोलो।
जब तक राग-रंग पर बलि-बलि होती हो, अलमस्त जवानी,
जब तक प्रेयसियों की यादों—पर ढल जाय आँख का पानी।

जब तक प्रश्न-चिह्न बनती हों सूली की असहाय पुकारें,
जब तक प्राण बचा रखने को हम पशु कोटि कोटि तन धारें।

वक्तव्यों, भाषणों, बयानों गाउनों* बनी गर्व की भाषा,
जब तक लाल किले में मरने वालों का लख रही तमाशा।
जहाँ तरुण शृंगार-प्रिय हों, जहाँ युवक की ढीली बाहें!
हुंकारों से बदल-बदल कर कवि ले रहा प्रणय की आहें।
जहाँ तेज भाषा भर दे दे उद्धारक का पद अनजाने!
वहाँ कौन है? जिसे कहूँ मैं युग की साधों को पहिचाने?

जीने की गुलाम चाहों ने जहाँ मरण का मूल्य बिगाड़ा
बलि की रानी यहाँ पढ़े? कैसे अपना अस्तित्व पहाड़ा!
लघु-लघु प्राणों की बस्ती में, मैं तो प्राण देखता आया,
और प्राणहीनों को रुचि से रगड़ सदैव फेंकता आया!

वायुयान के टिकटों से क्या बलि के देश पहुँच पाओगे?
अपने दुर्भाग्यों के रोने गीत बना कब तक गाओगे?
दायें बायें फला एशिया आग लगी जनगण में गहरी,
मेरी माँ की बेवसियों को घूर रहा हेमांचल प्रहरी;

चांग मिटे, सोकार्नो मिट ले, यू सा का घर बार उजाड़े,
आज ऊगता सूर्य पूर्व का—डुबा बजाते हमीं नगाड़े!
इस जग में जिन घातक प्रभुताओं ने घर घर आग लगाई,
मासिक वेतन पर बिक उनकी पामरता हमने दुलराई।

उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम, जहाँ गये भारती सिपाही।
भारत माँ की विमल मूर्ति पर आये पोत अनन्त सियाही!

---

* दिल्ली के लाल किले में अग्रगामी दल के नेताओं के मुकदमे में देशभक्त लोग 'गाउन' पहन कर वकालत करने जाते थे।

ओ अज्ञात हठीले भारत के मधुमय विकसित पागलपन !
ओ बेमूछों की दुनियाँ के तू किशोर, तू अल्हड़ बचपन।

उठ तू इस युद्धोत्तर जग की प्रवंचना में आग लगा दे;
ये गुलाम, ये भले आदमी ले, गंगा में डाल वहा दे।
दिन को रात वना, क्यों अगणित सपनों का भर स्वाँग रहा है,
एक स्वप्न, वस एक स्वप्न ही तो तेरा युग माँग रहा है।

श्यामल रंगों की नदियों में लाल रंग बह आये तो क्या ?
कुछ करोड़ कायर गणना का जीवन-गढ़ ढह जाये तो क्या ?
तौल तौल कर त्याग कर रहा 'क्या पाया' सो याद कर रहा !
नये नये बन्धन स्वीकृत कर तू भारत आज़ाद कर रहा !!

फेंक तराजू रे वलि-पंथी सिर के कैसे सौदे-सट्टे,
वहुत किये मीठे मुँह जग के अब उठ आज दाँत कर खट्टे।
गणित पढ़ा, पर क्या पढ़ जाना ? तू कितना, तेरे अरि कितने ?
कानूनों की पुस्तक ले कर फिर क्यों उठा रहा है फितने ?

चार दिनों की सिर्फ चाँदनी वर्षों का विश्वास न कर तू,
जोड़ जोड़ कर कर-पल्लव भुजदंडों का उपहास न कर तू।
सिर के ऊपर पेट चढ़ा कर, अपना सत्यानाश न कर तू,
'जन गण मन अधिनायक' तेरा उसे विश्व का दास न कर तू।

रोटी पा मरने से, अच्छा न था रोटियाँ खो मिट जाना ?
भूखों मरने से अच्छा क्या न था उभड़ कर खुद मर जाना ?
बूढ़े युग के बूढ़े सपने नन्हें हाथों से दफना दे !
ओ, पूरब के प्रलयी-पन्थी उठ चल एक भैरवी गा दे !

जन-जन अमर उभर दे मुक्त! मुक्ति का वर दे!
तब मैं कलम उठाऊँ तब मैं फिर कुछ गाऊँ।

मेरी रसवन्ती

प्रीति ने पुण्य की बेलि के पुष्प का
स्वाद ले ले, चढ़ाया जिसे चाव से,
चिन्तना ने चरित्रान्विता चाँद की
चाँदनी में जगाया मनोभाव से।

सृष्टि ने नम्र हो के बनाया स्वयं—
को, जहाँ चारुचित्रा नटी नर्तकी!
विश्व ने फैल के रूप धारे कई
कल्पना कामिनी रूठ भागी थकी!

सान्त ने नेति कह हार खाई जहाँ
और आया वहाँ जो स्वयं 'ईश' है!
जो जगाता, बनाता, मिलाता हुआ
खूब भाता, झुकाता स्वयं शीश है!

कोटि में एक को, एक में कोटि को
दिव्य दर्शानुवर्ती बनाती हुई
लोचनों में सदा दूर जाती हुई
आँसुओं में निकट हो नहाती हुई।

भूत में से लिये पीढ़ियों का नशा
भाव की प्राण-माला चुराती हुई!

किन्तु दीखा जहाँ वर्तमानत्व तो,
सूझ की सीढ़ियाँ सी लगाती हुई!
हाँ बुलाती हुई भाव की देवता—
को, भविष्यानुगामी बनाती हुई!
स्फूर्ति की सी परी, पूर्ति की माधुरी
मंगलों की महामोददा शैलजा!

जा जहाँ, मौन हो, तर्क मीठा बना,
जा जहाँ मस्त हो भाव भाषा बने;
विश्व की सृष्टि की नेह-आशा बने,
प्राण से खेलने का तमाशा बने!

नेह की रंगिनी, प्राण की संगिनी
आ हिये की सलोनी मनोदेवता
साध की साधिका, विश्व 'आ राधिका'
तू घनश्याम की हार-विद्युल्लता!

याद के झूलने में झुलाता रहूँ
आह में चाह का रक्त छाता रहे,
ले तुझे प्राण को मैं तिराता रहूँ
आँसुओं डूबना नित्य भाता रहे!

शीश की सीढ़ियाँ, शीश दे दे बने
शीश ले ले सजें क्रान्ति की थालियाँ
दीप से दीप की कोटि प्राणों बनीं
भूमि देखे, जगी आज दीवालियाँ।

आग से—आग की मन्त्रणा से—कहा
भाग की देवता को जगाने चलो,
लाख लाशों चरण धर चली आयगी
मुक्ति की मानवी को मनाने चलो।

एक ललकार दो, जाग जाये धरा,
क्या धरा है ? दुलारो न दुर्भाग को;
आ गई देवता, आरती ले चलो
लो जगाने चलो, प्राण की आग को!

रक्त का पथ लिये, प्राण का रथ लिये
शक्ति के देश में, मुण्डमाली बना,
सूझ में मस्त उद्दण्ड अश्वों चढ़ा
आ रहा है, कला की 'बनी' का 'बना'।

('माता' से)

अभ्यास और विमर्श

१. आशय समझाइये—आ ब्रह्मांड की…आरती ('मैं आ गई')। भूखंड बिछा…प्रहर ('बलि पंथी से')। जिन नयनों से…पानी से ? ('आँसू')। जिस रस में…बोझा ? ('अमर राष्ट्र')। मैं न सहूँगा… डोरी ('अमर राष्ट्र')। गरुड़ छोड़…हरने को ('वीर-पूजा')। दिन को रात…क्या ? ('विदा')। भूत में से…शैलजा ('मेरी रसवन्ती')।

२. 'बलि-पंथी से' कविता में जो प्रेरणा दी गई है उसको स्पष्ट कीजिये।

३. 'आँसू' कविता में जो अलंकार प्रयुक्त हुआ है उसका सौष्ठव प्रदर्शित कीजिये। इस कविता में प्रयुक्त चित्रों की तुलना जयशंकर प्रसाद के 'आँसू' में अंकित चित्रों से कीजिये। ['प्रसाद' के 'आँसू' से इस संकलन में उद्धरण नहीं है, फिर भी आप उस प्रसिद्ध कविता को उपलब्ध कर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिये।]

४. 'अमर राष्ट्र' कविता का सारांश लिख कर उसकी समीक्षा कीजिये।

५. 'एक भारतीय आत्मा' के कवित्व-सौष्ठव का विवेचन कीजिये। उपयुक्त उद्धरणों के द्वारा अपने निष्कर्षों को पुष्ट कीजिये।

६. 'एक भारतीय आत्मा' की शैली की विशेषताओं का उद्घाटन कीजिये। यथावसर उचित प्रमाण दीजिये।

७. 'एक भारतीय आत्मा' की राष्ट्रीय कविताओं की मार्मिकता का युक्तियुक्त विश्लेषण कीजिये।

८. यहाँ उद्धृत कविताओं में अलंकार-विधान का परिचय दीजिये।



गीत सप्तक

तिमिरदारण मिहिर दरसो !
ज्योति के कर अन्ध कारागार जग का सजग परसो ।
खो गया जीवन हमारा,
अन्धता से गत सहारा,
गात के सम्पात पर उत्थान दे कर प्राण बरसो ।
क्षिप्रतर हो गति हमारी,
खुले प्रति-कलि-कुसुम-क्यारी,
सहज सौरभ से समीरण पर सहस्रों किरण हरसो ।१।

•

आज प्रथम गाई पिक पञ्चम, गूँजा है मरु विपिन मनोरम !
मरुत-प्रवाह, कुसुम-तरु फूले, बौर-बौर पर भौंरे भूले,
पात-पात के प्रमुदित झूले, छाई सुरभि चतुर्दिक् उत्तम ।
आँखों से बरसे ज्योतिःकण, परसे उन्मन-उन्मन उपवन,
खुला धरा का पराकृष्ट तन, फूटा ज्ञान गीतमय सत्तम ।
प्रथम वर्ष की पाँख खुली है, शाख-शाख किसलयों तुली है,
एक और माधुरी घुली है, गीत-गन्ध-रस-वर्णों अनुपम ।२।

•

तरणि तार दो,
अपर पार को,
खे-खे कर थके हाथ,
कोई भी नहीं साथ,
श्रम-सीकर, भरा माथ,
बीच-धार, ओ !

पार किया तो कानन,
मुरझाया जो आनन,
आओ हे निर्वारण,
विपत वार लो।
पड़ी भँवर-बीच नाव,
भूले हैं सभी दाँव,
रुकता है नहीं राव—
सलिल-सार ओ। ३।

•

मन मधु बन आली!
ईरण तन की ज्योति तपन की, गगनघटा काली काली।
दमकी सौदामिनी ग्राम में, नूपुर-उर सुरधुनी धाम में,
रसरशना जो बजी नाम में, यौवन-वन वाली बाली।
सजी सुतनु तिर्यक् तप-रेखा, पंक्ति पंक्ति पर अविजित लेखा,
झुका दृगों से जिसने देखा, तन-मन-धन पा-ली ताली। ४।

•

वर दे, वीणावादिनि वरदे!
प्रिय स्वतन्त्र-रव अमृत-मन्त्र नव
भारत में भर दे!
काट अन्ध उर के बन्धन-स्तर;
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर;
कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर,
जगमग जग कर दे!

नव गति; नव लय, ताल-छन्द नव,
नवल कण्ठ, नव जलद-मन्द्र रव;
नव नभ के नव विहग-वृन्द को।
नव पर, नव स्वर दे। ५।

●

भर देते हो
बार-बार, प्रिय, करुणा की किरणों से।
क्षुब्ध हृदय को पुलकित कर देते हो।
मेरे अन्तर में आते हो, देव, निरन्तर,
कर जाते हो व्यथा-भार लघु,
बार बार कर-कंज बढ़ा कर,
अन्धकार में मेरा रोदन,
सिक्त धरा के अंचल को
करता है क्षण-क्षण—
कुसुम कपोलों पर वे लोल शिशिर-कण;
तुम किरणों से अश्रु पोंछ लेते हो,
नव प्रभात जीवन में भर देते हो। ६।

●

वसन्त आया—
सखि, वसंत आया।
भरा हर्ष वन के मन,
नवोत्कर्ष छाया।

किसलय-वसना नव-वय-लतिका।
मिली मधुर प्रिय उर तरु-पतिका,
मधुप-वृन्द बन्दी—
पिक-स्वर नभ सरसाया।
लता-मुकुल हार गन्ध-भार भर
वही पवन वन्द मन्द मन्दतर,
जागी नयनों में वन—
यौवन की माया।
आवृत सरसी-उर-सरसिज उठे,
केशर के केश कली के छुटे,
स्वर्ण-शस्य-अंचल
पृथ्वी का लहराया।७।

भिक्षुक

वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट-पीठ दोनों मिल कर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को,
मुँह फटी-पुरानी झोली का फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाये,
बाँये से वे मलते हुए पेट चलते हैं,
और दाहना दया-दृष्टि पाने की ओर बढ़ाये।

भूख से सूख ओंठ जब जाते,
दाता—भाग्य-विधाता से क्या पाते ?
घूँट आँसुओं के पी कर रह जाते।
चाट रहे हैं जूठी पत्तल कभी सड़क पर खड़े हुए।
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।

('अपरा' से)

अभ्यास और विमर्श

१. पहले गीत में किससे और क्या अनुरोध किया गया है ? इसका काव्य-सौष्ठव व्यक्त कीजिये।

२. दूसरे गीत में पिक के पञ्चम गाने का क्या आशय है ? इससे कौन सा सन्देश मिलता है ? 'खुला धरा का'''सत्तम' का आशय समझाइये।

३. 'वर दे वीणावादिनि वरदे' में जो कुछ माँगा गया है उसे बतलाते हुए उसका वास्तविक तात्पर्य स्पष्ट कीजिये। इससे नवीन युग और नये खेवे की कविता के आरम्भ की सूचना किस प्रकार मिलती है ?

४. 'भर देते हो' के काव्य-सौष्ठव का विवेचन कीजिये।

५. 'भिक्षुक' कविता में जो व्यंग्य है उसे समझाइये। इससे निराला जी की अनुभूति की जिस दिशा की सूचना मिलती है उसे स्पष्ट कीजिये।

६. "निराला की कविता में चित्र प्रस्तुत करने की अपूर्व कुशलता है।"—इसको यथेष्ट प्रमाणों से पुष्ट करते हुए व्यक्त कीजिये।

७. "निरालाजी की कविता में नवजागरण के सभी संकेत मिलते हैं।" इसका विश्लेषण कीजिये।

८. निरालाजी के अलङ्कार-विधान का सप्रमाण उल्लेख कीजिये।

सुमित्रानन्दन पन्त

वसन्त

चंचल पग दीप-शिखा के धर गृह, मग, वन में आया वसन्त !
सुलगा फाल्गुन का सूनापन, सौन्दर्य शिखाओं में अनन्त !
सौरभ की शीतल ज्वाला से फैला उर उर में मधुर दाह
आया वसन्त, भर पृथ्वी पर, स्वर्गिक सुन्दरता का प्रवाह !
पल्लव पल्लव में नवल रुधिर, पत्रों में मांसल रंग खिला,
आया नीली-पीली लौ से पुष्पों के चित्रित दीप जला !
अधरों की लाली से चुपके कोमल गुलाव के गाल लजा,
आया पंखड़ियों को काले-पीले धव्वों से सहज सजा !
कलि के पलकों में मिलन स्वप्न, अलि के अन्तर में प्रणय गान
ले कर आया, प्रेमी वसन्त—आकुल जड़-चेतन स्नेह-प्राण !
काली कोकिल !—सुलगा उर में स्वरमयी वेदना का अँगार,
अया वसन्त घोषित दिगन्त करती, भर पावक की पुकार ।
आः, प्रिये ! निखिल ये रूप रंग, रिलमिल अन्तर में स्वर अनंत,
रचते सजीव जो प्रणय मूर्ति उसकी छाया, आया वसन्त !

('पल्लविनी' से)

तप

तप रे मधुर मधुर मन !
विश्व-वेदना में तप प्रतिपल,
जग-जीवन की ज्वाला में गल,
बन अकलुष, उज्ज्वल औ' कोमल, तप रे विधुर विधुर मन !

अपने सजल स्वर्ण से पावन
रच जीवन की मूर्ति पूर्णतम,
स्थापित कर जग में अपनापन, ढल रे ढल आतुर मन !
तेरी मधुर मुक्ति ही बन्धन,
गन्धहीन तू गन्ध-युक्त बन,
निज अरूप में भर स्वरूप, मन, मूर्तिवान बन, निर्धन !
गल रे गल निष्ठुर मन !
('गुंजन' से)

अवगाहन

मैं सुन्दरता में स्नान कर सकूँ प्रतिक्षण,
वह बने न बंधन !
जिस स्वर्ग विभा का करता मन आवाहन,
उस रूप शिखा में जले न प्राण शलभ बन,
तुम मुझे घेर के बरसो, शोभा की घन,
मैं उर-शोभा में स्नान कर सकूँ प्रतिक्षण !
तुम प्रीति दान कर सको बनूँ मैं निर्भय,
तुम हृदय दे सको पूजूँ मैं निःसंशय,
मत दो केवल मधु स्वप्नों का सम्मोहन,
मैं अमर प्रीति में स्नान कर सकूँ प्रतिक्षण !

उद्बोधन

मानव भारत हो नव भारत, जन मन धरणी सुन्दर,
नवल विश्व हो वह आभा-रत, सकल मानवों का घर !

जाति पाँति देशों में खंडित भू जन,
धर्म नीति के भेदों में बिखरे मन,
नव मनुष्यता में हों मज्जित जीर्ण युगों के अंतर,
विचरें मुक्त हृदय, अंतःस्मित, प्रीति-युक्त नारी-नर!

लोक चेतना ज्वार बढ़ रहा प्रतिक्षण,
स्वप्नों के शिखरों पर कर युग नर्तन।
तड़क रहीं हथकड़ियाँ झनझन मन के पाश भयंकर,
अग्नि-गर्भ युग-शिखर विकट फटने को है, छोड़ो डर!

आज समापन युग का वृत्त पुरातन,
भू पर संस्कृति चरण धर रही नूतन,
रँग रँग की आभा-पंखड़ियाँ बरसाता झुक अंबर,
खोलो उर के रुद्ध द्वार, हँसता स्वर्ण युगांतर!

विश्व मनःसंगठन हो रहा विकसित,
जन जीवन संचरण ऊर्ध्व, भू विस्तृत,
नव्य चेतना केतु फहरता, सत रँग द्रवित दिगंतर;
आदर्शों के पोत बढ़ रहे, पार अतल भव सागर!
स्वर्ग भूमि हो भू पर भारत जन मन धरणी सुन्दर,
अंतर ऐश्वर्यों से मंडित मानव हो देवोत्तर!

भू स्वर्ग

तुम किन आकाशों में मन को ले जाती हो नीलिमा तरल!
तह तह मुझको नीहार रजत ढँक लेता खुल उर सा कोमल!

अंतर आभाओं के पथ से उठता मन नीरव ध्यान चरण,
स्वप्नों की कलियाँ रोओं में हँसतीं भर सौरभ सुर मादन!

कँपता उर, लगते तड़ित स्पर्श चेतना जलधि के हर्ष चपल,
बरसातीं शत ऊषा लाली स्वर्गिक वातायन से उज्ज्वल!

टूटते शिखर पर मानस के रँग रँग के छाया रव निर्झर,
नव सुषमा, प्रीति मधुरिमा से भर जाता ज्योति द्रवित अंतर!

मैं उतर, देखता चकित नयन रवि आभा में डूबी धरती,
हरियाली के चल अंचल में किरणें स्वप्नों के रँग भरतीं,

भू की अतृप्त अंतर ज्वाला फूलों में विहँस रही सुन्दर,
आकांक्षा का आकुल क्रन्दन मधुकर में गूँज रहा मनहर!

वह मिट्टी की शय्या में जग भरती प्रकाश में अँगड़ाई,
मुकुलित अंगों में फूट रही उन्मत्त स्वर्ग की तरुणाई!

वह देवों के उपभोग हेतु मिथ खोल रही निज वक्षःस्थल,
उसके प्राणों का हरित तिमिर जीवन में निखर रहा उज्ज्वल!

वह मानवीय बन उभर रही पा स्पर्श निर्जरों का चेतन,
वह बनी शिला से मातृ मूर्ति उर में करुणा का संवेदन!

आकाश झुक रहा धरती पर बरसा प्रकाश के उर्वर कण,
धरती उसके उर में बुनती छाया का सतरँग सम्मोहन!

हो रहा स्वर्ग से धरणी का जड़ से चेतन का रहस मिलन,
भू स्वर्ग एक हो रहे शनैः सुरगण नर-तन करते धारण!

('उत्तरा' से)

स्वाधीन चेतना

जागो हे स्वाधीन चेतने, जन मन शौर्य जगाओ,
भारत की आलोक शिखे, नव युग के चरण बढ़ाओ!

तेरे उन्मद पद चालन से झरें मृत्यु भय संशय,
अंग-भंगि से जीवन की शोभा फूटे मंगलमय!
हाव भाव से नव आशा नव अभिलाषा बरसाओ!

तेरे श्वासों में ज्वाला हो, अधरों में मधु मादन,
भ्रू विलास बलिदान, स्निग्ध चितवन हो नव संजीवन!
इंगित पर जन शीश झुकें, जन शीश उठें, तुम आओ!

तेरी हिंसा रहे अहिंसक जग जीवन के रण में,
बजे सत्य की भेरी दुविधा मौन चीर जन मन में!
मर्त्यों की दुर्बलता हर, जीवन अवसाद मिटाओ!

रूढ़ि रीति के मुंड हृदय में, ज्योति खड्ग हो कर में,
पदतल पर नत मृत्यु भीति हो, जीवन रुधिर अधर में!
रक्त पात्र से फिर नव चेतन अरुण ज्वाल छलकाओ!

पाप पुण्य परिभाषा मिथ्या स्वर्ग मुक्ति आशा हर,
आत्मा का अमरत्व बता जीवन के मन के भीतर!
हे युग युग संभवे, विश्व को नव सन्देश सुनाओ!

देख रहा मैं काल दंश, कट रहे युगों के बंधन,
उर उर में मच रहा महाभारत,—यह विश्व विवर्तन!
कोटि कंठ मिल कर वन्दे मातरम् निनाद गुँजाओ।

काँप रहे युग युग के भूधर, डुबा रहा तट सागर!
गरज रहा जन मन का नभ फिर धूमिल वाष्पों से भर।
विद्युत् लासिनि, जगो, इंद्रधनुप्रभ तिरंग फहराओ।
भारत की स्वाधीन चेतने, जन मन ज्योति जगाओ।

('युगपथ' से)

गीत

रश्मि चरण धर आओ।
प्राणों के धन, अंधकार, तप स्वर्ण शुभ्र मुसकाओ।

निःस्वर ताराओं के नूपुर, रणित पवन वीणाओं के सुर,
अग्नि विहंगम मनःक्षितिज में ज्योति पंख फैलाओ।

अनाहूत हे, अविज्ञात हे, लपटों में लिपटे प्रभात हे,
स्वर्गदूत-से उतर, हृदय की गोपन व्यथा मिटाओ।

पावक परिमल के वसंत हे, मधु ज्वालाओं के दिगन्त हे,
मानस के सूने पतझर को शोभा में सुलगाओ।

किरणोज्ज्वल कंटककिरीट धर विचरो तम पंकिल भूमग पर,
प्राणों के निर्मम याचक हे, जीवन रज लिपटाओ।

खोलो अंतर के तन्द्रिल पट, स्वर्ग सुरा से भरो रश्मि घट,
नव स्वर लय गति में जीवन को स्वप्न मुखर कर जाओ।

('अतिमा' से)

अभ्यास और विमर्श

१. व्याख्या कीजिये—चंचल पग···अनन्त ('वसन्त'), स्वप्नों की ···मादन ('भू स्वर्ग'), तेरी हिंसा···मन में ('स्वाधीन चेतना')।

२. 'वसन्त' कविता में कवि ने प्रकृति का जो सुन्दर चित्रण किया है उसे बतलाते हुए उसकी विशेषताओं का परिचय दीजिये।

३. 'तप' कविता में वर्णित रूपक स्पष्ट कीजिये।

४. 'भू स्वर्ग' के द्वारा कवि भविष्यत् का जो संदेश दे रहा है उसे बतलाइये।

५. पन्तजी की राष्ट्रीय चेतना विषयक कविताओं की विशेषताओं का वर्णन कीजिये।

६. "पन्तजी की कविता में अलंकार बहुत ही सुन्दर चित्र प्रस्तुत करते हैं।" इस पर विचार कीजिये।

७. पन्तजी की कविता के क्रमिक विकास का वर्णन कीजिये। उपयुक्त उद्धरण देते हुए अपने निष्कर्षों की पुष्टि कीजिये।



श्रीमती महादेवी वर्मा

गीतिका

निशा की, धो देता राकेश चाँदनी में जब अलकें खोल,
कली से कहता था मधुमास 'बता दो मधुमदिरा का मोल';

झटक जाता था पागल वात धूलि में तुहिन-कणों के हार,
सिखाने जीवन का सङ्गीत तभी तुम आये थे इस पार।

बिछाती थी सपनों के जाल तुम्हारी वह करुणा की कोर,
गई वह अधरों की मुस्कान मुझे मधुमय पीड़ा में बोर;

भूलती थी मैं सीखे राग बिछलते थे कर बारम्बार,
तुम्हें तब आता था करुणेश! उन्हीं मेरी भूलों पर प्यार!

गये तब से कितने युग बीत, हुए कितने दीपक निर्वाण,
नहीं पर मैंने पाया सीख तुम्हारा सा मनमोहन गान।

नहीं अब गाया जाता देव, थकी अँगुली, हैं ढीले तार,
विश्ववीणा में अपनी आज मिला लो यह अस्फुट झङ्कार।१।

('नीहार' से)

चुभते ही तेरा अरुण बान!
बहते कन कन से फूट फूट, मधु के निर्झर से सजल गान!

इन कनक रश्मियों में अथाह, लेता हिलोर तम-सिन्धु जाग;
बुद्बुद् से बह चलते अपार, उसमें विहगों के मधुर राग;
बनती प्रवाल का मृदुल कूल, जो क्षितिज-रेख थी कुहर-म्लान!

नव कुन्द-कुसुम से मेघ-पुञ्ज, बन गये इन्द्रधनुषी वितान,

दे मृदु कलियों की चटक, ताल, हिम-बिन्दु नचाती तरल प्राण ;
धो स्वर्णप्रात में तिमिरगात, दुहराते अलि निशि-मूक तान !

सौरभ का फैला केश-जाल, करतीं समीरपरियाँ विहार,
गीली केसर-मद झूम-झूम पीते तितली के नव कुमार ;
मर्मर का मधुसंगीत छेड़ देते हैं हिल पल्लव अजान !

फैला अपने मृदु स्वप्न-पंख उड़ गई नींद-निशि क्षितिज-पार,
अधखुले दृगों के कञ्ज-कोष पर छाया विस्मृति का खुमार ;
रँग रहा हृदय ले अश्रु-हास, यह चतुर चितेरा सुधि-विहान ।२।

('रश्मि' से)

विरह का जलजात, जीवन विरह का जलजात !
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास ;
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात,
जीवन विरह का जलजात !

आँसुओं का कोष उर, दृग अश्रु की टकसाल ;
तरल जल-कण से बने घन सा क्षणिक मृदु गात !
जीवन विरह का जलजात !

अश्रु से मधुकण लुटाता आ यहाँ मधुमास ;
अश्रु ही की हाट बन आती करुण बरसात ;
जीवन विरह का जलजात !

काल इसको दे गया पल-आँसुओं का हार,
पूछता इसकी कथा निश्वास ही में वात !
जीवन विरह का जलजात !

जो तुम्हारा हो सके लीला कमल यह आज,
खिल उठे निरुपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात!
जीवन विरह का जलजात!। ३।

('नीरजा' से)

मैं नीर-भरी दुख की बदली!
स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा, क्रन्दन में आहत विश्व हँसा,
नयनों में दीपक से जलते पलकों में निर्झरिणी मचली।
मेरा पग पग संगीत भरा, श्वासों से स्वप्न-पराग झरा;
नभ के नव रँग बुनते दुकूल, छाया में मलय-बयार पली!
मैं क्षितिज-भृकुटि पर घिर धूमिल चिन्ता का भार बनी अविरल,
रज-कण पर जल-कण हो बरसी नवजीवन-अंकुर बन निकली!
पथ को न मलिन करता आना, पद-चिह्न न दे जाता जाना,
सुधि मेरे आगम की जग में सुख की सिहरन हो अन्त खिली।
विस्तृत नभ का कोई कोना, मेरा कभी न अपना होना,
परिचय इतना, इतिहास यही, उमड़ी कल थी मिट आज चली।४।

('सान्ध्य गीत' से)

जो न प्रिय पहचान पाती!
दौड़ती क्यों प्रति शिरा में प्यास विद्युत् सी तरल बन?
क्यों अचेतन रोम पाते चिर व्यथामय सजग जीवन?
किसलिए हर साँस तन में सजल दीपक-राग गाती?
चाँदनी के बादलों से स्वप्न फिर फिर घेरते क्यों?
मदिर सौरभ से सने क्षण दिवस-रात बिखेरते क्यों?
सजग स्मित क्यों चितवनों के सुप्त प्रहरी को जगाती?

कल्प-युग-व्यापी विरह को एक सिहरन में सँभाले
शून्यता भर तरल मोती से मधुर सुधि-दीप वाले,
क्यों किसी के आगमन के शकुन स्पन्दन में मचाती ?
मेघ-पथ में चिह्न विद्युत् के गये जो छोड़ प्रिय-पद,
जो न उनकी चाप का मैं जानती संदेश उन्मद,
किसलिए पावस नयन में प्राण में चातक बसाती ? ।५।

('दीपशिखा' से)

अभ्यास और विमर्श

१. व्याख्या कीजिये—निशा की धो देता···इस पार (१), पथ को ···अन्त खिली (४)।

२. दूसरे गीत में कथित 'फैला अपने···सुधि-विहान' का क्या तात्पर्य है ? इस कथन का औचित्य प्रकट कीजिये।

३. तीसरे गीत में जीवन को विरह का जलजात मानने का क्या अभिप्राय है ? इसमें कवयित्री ने जीवन को किसका लीला-कमल बनाने का अभिलाष प्रकट किया है ? इसका क्या प्रयोजन है ?

४. पाँचवें गीत में उल्लिखित 'प्रिय' कौन है ? उसके पहचानने का क्या प्रमाण है ? इसमें वर्णित उद्दीपनों का उल्लेख करते हुए उनकी स्वाभाविकता का विवेचन कीजिये।

५. दूसरे एवं तीसरे गीत में प्रयुक्त रूपक स्पष्ट करके बतलाइये कि उसके द्वारा मनोदशा का वर्णन कैसे प्रभावशाली हुआ है।

६. महादेवीजी के गीतों में किस मनोदशा की अभिव्यक्ति विशेष रूप से हुई है ? किसके प्रति ? उसके मर्म का उद्घाटन कीजिये।

७. श्रीमती महादेवी वर्मा के उक्ति-सौष्ठव का निरूपण कीजिये।

रामधारीसिंह 'दिनकर'

बापू से

संसार पूजता जिन्हें तिलक, रोली, फूलों के हारों से,
मैं उन्हें पूजता आया हूँ बापू, अब तक अंगारों से।
अंगार, विभूषण यह उनका विद्युत् पी कर जो आते हैं,
ऊँघती शिखाओं की लौ में चेतना नई भर जाते हैं।

अंगार हार उनका, जिनकी सुन हाँक समय रुक जाता है।
आदेश जिधर का देते हैं, इतिहास उधर झुक जाता है।
अंगार हार उनका कि मृत्यु भी जिनकी आग उगलती है,
सदियों तक जिनकी सही हवा के वक्षस्थल पर जलती है।

पर, तू इन सब से परे; देख तुझको अंगार लजाते हैं,
मेरे उद्वेलित-ज्वलित गीत सामने नहीं हो पाते हैं।
बापू, तू वह कुछ नहीं, जिसे ज्वालाएँ घेरे चलती हैं,
बापू, तू वह कुछ नहीं, दिशाएँ जिसको देख दहलती हैं।

तू सहज शान्ति का दूत, मनुज के सहज प्रेम का अधिकारी,
दृग में उँड़ेल कर सहज शील देखती तुझे दुनिया सारी।
धरती की छाती से अजस्र चिर-संचित क्षीर उमड़ता है,
आँखों में भर कर सुधा तुझे यह अम्बर देखा करता है।

कोई न भीत, कोई न त्रस्त, सब ओर प्रकृति है प्रेम-भरी,
निश्चिन्त जुगाली करती है छाया में पास खड़ी बकरी।
भू पर तो आते वे भी जो जीता या हारा करते हैं,
मिट्टी में छिपे अनल को अपनी ओर पुकारा करते हैं।

जीते लपटों के बीच मचा धरणी पर भीषण कोलाहल,
जाते जाते दे जाते हैं भावी युग को निज तेज-अनल।
पर तू इन सब से भिन्न ज्योति जेताजेता से महीयान,
कूटस्थ पुरुष ! तेरा आसन सबसे ऊँचा, सबसे महान।

सब ने देखे विद्वेष-गरल, तूने देखा अमृत-प्रवाह,
सब ने वडवानल लिया, लिया तूने करुणा-सागर अथाह।
नर के भीतर की दुनिया में है कहीं अवस्थित देवालय।
सदियों में कभी कभी कोई मरमी पाता जिसका परिचय।

मानवता का मरमी सुजान ! आया तू भीति भगाने को,
अपदस्थ देवता को नर में फिर से अभिषिक्त कराने को।
तू चला, लोग कुछ चौंक पड़े, 'तूफ़ान उठा या आँधी है ?'
ईसा की बोली रूह 'अरे! यह तो बेचारा गाँधी है।'

दुनिया ने चाहा प्रश्न करे, क्या कहिये इस दीवाने को ?
दो बूँद सुधा ले कर निकला है जग की आग बुझाने को।
पर, तू न रुका; सीधे अपने निर्दिष्ट पंथ पर जा निकला,
पद-चिह्नों को देखते हुए पीछे पीछे इतिहास चला।

इतिहास चला, पर, नहीं मुग्ध हो कर ज्वलन्त भाषाओं से,
वह चला स्वयं प्रेरित हो कर अपनी अस्फुट आशाओं से।
मानवता का इतिहास, युद्ध के दावानल से जला हुआ,
मानवता का इतिहास, मनुज की प्रखर बुद्धि से छला हुआ।

मानवता का इतिहास, विकल हाँफता हुआ लोहू-लुहान,
दौड़ा तुझसे माँगता हुआ बापू, दुःखों से सपदि त्राण।

अभ्यास और विमर्श

१, व्याख्या कीजिये—संसार पूजता...पर जलती है। भू पर तो आते...तेज-अनल। इतिहास चला...आशाओं से। अब प्रश्न...टूटेंगी। कितना विभेद...पसार। श्रद्धा...लगी पार।

२. कवि के गीत बापू के सामने नहीं हो पाते—इसका क्या तात्पर्य है ? क्यों ऐसा होता है ?

३. बापू ने किस तरह इतिहास बदल दिया है ? उनके जीवन की घटनाओं के द्वारा प्रमाणित कीजिये।

४. बापू के जीवन के किन महत्त्वपूर्ण तत्त्वों का इस अवतरण में उल्लेख हुआ है ? उनका विशद परिचय दीजिये।

५. "इस अवतरण में कवि की कविता की दिशा के बदलने की सूचना मिलती है।" कैसे ? सप्रमाण सिद्ध कीजिये।

———



श्यामनारायण पाण्डेय

गोरा की वीर-गति

[प्रसङ्ग—'जौहर' काव्य में कवि ने सती पद्मिनी के जौहर की गाथा को उसकी समाधि के पुजारी के द्वारा पथिक से कहलाया है। अलाउद्दीन ने राणा रत्नसिंह को छल से बन्दी कर लिया था। उसको मुक्त करने के लिए गोरा और बादल ने भी 'शठं प्रति शाठ्यं' की नीति बरती। पद्मिनी की ओर से कहलाया गया कि मैं सुल्तान का प्रस्ताव स्वीकार कर उसके हर्म्य (मि० फारसी 'हरम') में आने को प्रस्तुत हूँ। परन्तु मैं आऊँगी अपनी सहेलियों के साथ। तदनुसार रानी और उसकी सहेलियों के नाम पर राजपूत बन्द डोलियों में बैठ कहार बन कंधों पर उन्हें उठा कर अलाउद्दीन के गढ़ में पहुँचे। वहाँ तथाकथित पद्मिनी की डोली पहले राणा के बन्दीगृह के पास गयी। राणा को मुक्त करके चित्तौड़ भेज दिया गया और डोलियों के भीतर के राजपूतों ने अपने असली रूप में प्रकट हो गोरा और बादल के नेतृत्व में खिलजी की सेना से लोहा लिया। नीचे उसी युद्ध का दृश्य देखिये।]

नव वसन्त के कुसुम-शरों से मार भगाया गया शिशिर।
अर्द्धचन्द्र दे कर जग के उस पार लगाया गया शिशिर।
छिपा काल की गोदी में, जब हारा शिशिर वसन्त शक्त से।
दोनों ऋतुओं के संगर से तरु भी तर हो गये रक्त से।१।

इसी लिए जो पल्लव निकले, शोणित-स्नात लाल ही निकले।
या तरु तरु की डाल डाल से बन कर ज्वलित ज्वाल ही निकले।
जान पराजय वीर शिशिर के गाँव फूँकना रंच न भूले।
वही लगी है आग भयंकर, ये पलाश के फूल न फूले।२।

लाल-लाल आँखें कर कोयल, बौरे आमों की डाली पर।
मधु की विजय सुनाती फिरती, मस्त विजय थी सुखाली पर।
यशोगान करते अलि गुन गुन, झूल टहनियों के झूलों पर।
कानों में कुछ कह जाती थीं, बैठ तितलियाँ नव फूलों पर।३।

मन्द मन्द मलयानिल वन वन यश-सौरभ ले कर बहता था।
सब से मिल कर नव वसन्त के गौरव की गाथा कहता था।
केवल पिक के ही न, विजय पर सभी खगों के गान सुरीले।
वन-उपवन भर देते गा गा, डाल डाल पर गायन गीले।४।

उधर मृदुल मधु की दोपहरी गूँज रही थी विहग-गान से,
इधर कहारों की तलवारें निकल रही थीं म्यान म्यान से।
परदे उठे सूरमे निकले, मानो निकले सिंह माँद से।
दशों दिशाएँ थर थर काँपीं, हर हर के हुङ्कार-नाद से।५।

एक साथ ही सिंहनाद कर बोल दिया धावा डेरों पर,
आग बरसने लगी अचानक, खिलजी के निर्दय घेरों पर।
अरि की आँखें तलवारों की चकाचौंध से मन्द हो गयीं।
हर हर की उद्दाम बोलियाँ नभ तक और बुलन्द हो गयीं।६।

क्षण भर तक तो वैरी सेना, थकित-चकित-सी रही देखती,
और रही व्याकुल आँखों से लाल रक्त से मही देखती।
किन्तु दूसरे ही क्षण उनकी तलवारें सिर काट रही थीं,
रुण्ड-मुण्ड से समर-मेदिनी, नाच नाच कर पाट रही थीं।७।

जहाँ एक क्षण पहले मंगल-गान-कृत्य होने वाला था।
कौन जानता, वहाँ मृत्यु का भयद नृत्य होने वाला था।



पतझड़ के पत्ते तरु से, शिर धड़ से अलग हुए जाते थे,
अरावली-से अचल सूरमे, जड़ से विलग हुए जाते थे।

योद्धा भालों की नोकों पर सने खून से जीभ निकाले।
निकली आँखों से भय भर-भर, विकल मर रहे थे मतवाले।
खून फेंकता मुँह से कोई, आँखें अलग निकल आई थीं।
वीर बरछियाँ निगल रही थीं, जो सौ वार निगल आई थीं।९।

वीर राजपूतों की टोली, आँख मूँद, कर वार रही थी।
कभी छुरा, तो कभी दुधारी, कभी निकाल कटार रही थी।
कभी-कभी आगे पीछे हो, गोरा-बादल पिल पड़ते थे।
देख पैंतरे उन दोनों के अरि सेनानी हिल पड़ते थे।१०।

काट रहा उस पार और इस पार सिपाही काँप रहे थे।
गोरा था इस पार और उस पार बहादुर हाँफ रहे थे।
एक साँस में ही गोरा ने कंठ काट कर साफ कर दिये।
वैरी के अपराध युद्ध में प्राण-दंड ले माफ कर दिये।११।

तब तक शत्रु-सवारों की भी सेना वहाँ तुरन्त आ गयी।
रावल के उन नर-सिंहों की मानो मौत दुरन्त आ गयी।
देख सवारों को चिनगारी रोम रोम से लगी निकलने।
दोनों आँखें लाल हो गयीं, लगी क्रोध से काया जलने।१२।

गोरा के डर से घोड़े ने अपने ही घोड़ों को घेरा।
लूट लिया उनका साहस सब, बना प्रखर उद्दण्ड लुटेरा।
बाजि-गर्दनों से मिल मिल कर छप-छप करने लगी दुधारी।
गिरी सवारों पर बिजली-सी गोरा की करवाल-कुमारी।१३।

जान उसी की बची युद्ध से, जिसने भग कर जान बचायी।
औरों ने तो रण करने से अपनी मर कर जान बचायी।
गिरे शत्रुओं के शत कोड़े, अंगुल भर बढ़ सके न घोड़े।
गोरा की तलवार-चोट से साथ सवारों के तन छोड़े।१४।

इतने में अंकुश के बल से मत्त हाथियों का दल आया।
देख अकेला ही गोरा को शिर उतारता बादल आया।
रोम-रोम दोनों के तत्क्षण, अंग-अंग के खड़े हो गये।
बढ़े ओज-बल, देह-यन्त्र के पुरजे-पुरजे कड़े हो गये।१५।

रिक्त वाम कर देख वीर का विकल हो उठी कठिन दुधारी।
बोली अभी निकाल म्यान से मुझको रहने दे न कुमारी।
आज रक्त-सिन्दूर लगा लूँ, आज सुहागिन बन कर घूमूँ।
मिल लूँ गले विदा से पहले, सहेलियों के पद-कर चूमूँ।१६।

यह कह कर तलवार म्यान से बायें कर में आप आ गयी।
युद्धस्थल में प्रखर धार की एक भयंकर ज्योति छा गयी।
दोनों हाथों की तलवारें मस्त गजों में घूम रही थीं।
डूब-डूब शोणित-सागर में बार-बार भू चूम रही थीं।१७।

क्षण भर में ही घटा गजों की, गोरा-असि-आँधी से फूटी।
उसके कर्कश कर-प्रहार से, द्विरद-शृङ्खला तड़ से टूटी।
पर धोखे से एक करी ने वार किया पीछे से आ कर।
हरके से चल पड़ा मत्त गज, हलचल हाहाकार मचा कर।१८।

घोड़े को तो पकड़ लिया, पर पा न सिंह को सका वहाँ पर।
बल्कि गिरा दो टुकड़े हो कर, और मत्त गज गिरे जहाँ पर।

लेकिन घेर लिया गोरा को, मातंगों ने सभी ओर से।
उस दुर्जय रणमत्त सिंह को चले चीरने कोर-कोर से।१९।

पर उसकी दोनों तलवारें दो-तड़ितों सी तड़प रही थीं।
मत्त मतंगों पर गिर-गिर कर, प्राण बराबर हड़प रही थीं।
शुण्ड काट कर तुण्ड उड़ाया, पूँछ काट कर मुण्ड उड़ाया।
अपनी खरतर तलवारों से छपछप विकल वितुण्ड उड़ाया।२०।

मर-मर समर मतंग गिरे या नभ के बादल गिरे धरा पर।
या हिल-हिल भूचाल-वेग से काले पर्वत गिरे धरा पर।
अंग-अंग पर थका वीर का, जीवन-स्वर का ताल आ गया।
तर-तर चला पसीना तन से, गोरा का भी काल आ गया।२१।

वीर साँस लेने को ठहरा, साँसों से संसार भर गया।
तब तक अहि के सदृश किसी का बाण कलेजा पार कर गया।
एक साथ ही गिरीं कटारें एक साथ सौ-सौ तलवारें।
रक्त-कलित गोरा के तन पर बरछी की अगणित फुफकारें।२२।

निकली बोटी बोटी से ध्वनि, मिटो जवानो, सती-मान पर।
वीर, मर मिटो आन-बान पर, वीर मर मिटो स्वाभिमान पर।
अजर-अमर है गोरा मर कर, बसा हुआ जग के प्राणों में।
उसकी कथा कही जाती है, अब तक गढ़ के पाषाणों में।२३।

अभ्यास और विमर्श

१. व्याख्या कीजिये—अर्द्धचंद्र दे कर...शिशिर। क्षण भर...देखती। यह कह कर...चूम रही थीं।

२. अलंकार बतलाइये—छिपा काल···ज्वाल ही निकले। परदे उठे···माँद से। क्षण भर में···फूटी। जान पराजय···फूल न फूले। मर-मर समर···गिरे धरा पर।

३. इस अवतरण के आरम्भ में प्रकृति के वर्णन की क्या विशेषता है? उससे कथाप्रसङ्ग के प्रभाव की वृद्धि कैसे हुई है?

४. इस उद्धरण में वर्णित युद्ध का शब्दचित्र अङ्कित करके उसकी स्वाभाविकता के सम्बन्ध में विचार कीजिये।

५. इस अवतरण के आधार पर कवि के वर्णन-कौशल और विधान का परिचय दीजिये।





गये थे लेकिन वे कामयाब नहीं हो सके। जिलाधिकारी स्तर के दो बड़े अफसर और उनके साथ पी. ए. सी. के दो टरक हथियारबंद जवान। उन्हें पता था कि टिकैत गाव का एक मामला निपटाने आये हैं। गांव वालों ने जब धूल उड़ती देखी तो सजग हो गये। टिकैत को एक घर में बैठा दिया गया और चारों ओर छत-छत पर किसान नेता के कमांडो [illegible] लाने तैनात हो गये। अगर उन्हें तो क्या हो[illegible] की कोशिश की जाती लोग मरते। लेकिन अफसरों और कुछ [illegible] आ गयी और वे लौट गये, सब पहरे में टिकैत को गांव वाले रिमौली तक छोड़ने गये।

आखिर सरकार का इरादा क्या है? क्या वह समझती है कि टिकैत के साथ बढ़ते हुजूम को बंदूकों के बल रोका जा सकेगा या फिर टिकैत को [illegible] में गिरफ्तार करके इस आंदोलन को खत्म किया जा सकेगा? अगर सरकार का नजरिया कुल मिलाकर यही है तो निश्चय ही यह

...क किसान

...तों में

सम्पत्तिसे वैकल्पिक कार्य क्षेत्रकी

गये। मृतकोंमें अधिकांश बच्चे हैं।

...वादका रास्ता दिखा रहे हैं

...न है। केवल गिरफ्तारी की ... टिकैत के पक्ष में वे किसान ...य, जो अभी तक चुप थे ... दिन टिकैत को सरकार गिरफ्तार कर लेगी, उस दिन तो गांव के गांव सड़कों पर निकल आयेंगे और फिर इस आंदोलन को लाठियां और बंदूकें नहीं दबा सकेंगी।

वी... कि... को... -त... अ... देकर और उनकी उप... देने का खोखला प्रलोभ... अपने आदमियों को टि... घुमाकर लेकिन हर ब... नाकामयाबी मिली है ...

सरकार ने जो हथकंड... की कोशिश की, उस... गिरफ्तार करने और ... को खत्म करने की का... है तो शपथ टिकैत के... संख्या में किसान मेरठ... सरकार और उसके अ... के साथ किसी प्रकार ... यह भूल जा रहे हैं कि... राजनीतिक नेता नहीं... यूनियन किसी प्रकार ... सोच से संचालित हैं य... टिकैत ने बहुत कम ... अपनी धाक जमा ली ... भाषण करने वाले नेत... करने के आदी भी नहीं...

(शेष पृ...



टिकैत बंदूकों के साथ में

...मृत्युसे ...ना

... करेंगे।

...नुसार श्री महेन्द्र सिंह टिकैतने जो ... रखी है उन्हें पूरा कर पाना ... असंभव है। ...

राजीव सरकारके खिलाफ संघर्ष तेज करनेपर विचार

नयी दिल्ली, ३० जनवरी (भा.)। जनमोर्चा और लोकदल (ब) के बड़े नेताओंकी आज यहां वार्ता हुई जिसमें राजीव सरकारके खिलाफ संघर्ष तेज करनेके उपायोंपर विचार किया गया। वार्ताकी समाप्तिके बाद मोर्चा और लोकदल (ब) के सुप्रीमो ... की ...

भारत श्री... प्रस्ताव...

नयी दिल्ली, ३० ज... मंत्री श्री राजीव गांधीने ... श्रीलंकाने भारतके सा... प्रस्ताव किया ...